॥ ॐ ॥

॥ श्रीवर्द्धमानाय नमः ॥

जैनधर्म शिक्षावली

प्रथम भाग

लेखक

उपाध्याय जैनमुनि आत्माराम जी महाराज पंजाबी

प्रकाशक

ला० शिवप्रसाद अमरनाथ जैन

अम्बाला शहर

ग्लोब प्रिंटिंग वर्क्स लिमिटेड मेरठ में

पं० चन्द्रमल के प्रबन्ध से

छपवा कर प्रकाशित किया।

[वि० सं० १९७९] [पहलीवार १०००]

निवेदन ।

सर्व जैन प्रेमियों की सेवा में निवेदन है कि सौभाग्य से इ
वर्ष का चतुर्मास भी श्रीश्रीश्री १०८ गणावच्छेदक श्री स्थवि
पदविभूषित स्वामी गणपतिरायजी महाराज श्रीश्रीश्री १०
स्वामी जयरामजी महाराज श्रीश्रीश्री १०८ शालिगरामजी महारा
और श्रीश्रीश्री १०८ उपाध्याय आत्मारामजी महाराज का य
पर ही हुआ जिससे मैंने श्रीउपाध्यायजी महाराज से प्रार्थन
की-कि महाराज जी ! जैन शिक्षावली न होने के कारण जैन
पाठशालाओं में एक बड़ी त्रुटि है, इसलिए एक जैन ध
शिक्षावली पञ्चम श्रेणी तक की अवश्य ही होनी चाहिए ताकि
वह सर्व जैन-पाठशालाओं में पढ़ाई जावे और उससे पूर्ण ज
शिक्षा उनको मिल सके तथा जैन पाठशालाओं की बड़ी त्रुटि ज
इस समय में है वह दूर हो, तब श्रीमहाराजजी ने आज्ञा दी
कि-यदि कुछ आप भी इस कार्य में समय और सम्मति दें तो
यह काम शीघ्र हो सक्ता है। तब मैंने इस कार्य में यथावकाश
और यथा बुद्धि अपनी सम्मति प्रगट की। हर्ष का समय है कि
उसी समय श्रीउपाध्यायजी महाराजजी ने इस को लिखना
प्रारम्भ किया, जिस के चार भाग पहले तय्यार हो कर छप चुके
हैं और पंचम भाग आपके सामने है।

आशा है कि आप सज्जन इस को जैन पाठशालाओं के
पाठक्रम में रख कर अपनी होनहार भावी सन्तान को जैन
शिक्षित बनायेंगे।

निवेदक— फत्तुराम जैन, लुधियाना।

* ॐ *

श्रीवर्द्धमनाय नमः

जैनधर्म शिक्षावली

पंचम भाग

लेखक

उपाध्याय जैनमुनि आत्माराम जी
महाराज पंजाबी

प्रकाशक

ला० शिवप्रसाद अमरनाथ जैन
अम्बाला शहर

ग्लोब प्रिंटिंग वर्क्स लिमिटेड में
पं० चन्द्रबल के प्रबन्ध से
छपवा कर प्रकाशित किया।

वि० सं० १९८९ पहलीबार १०००

॥ नमः श्री वर्द्धमानाय ॥

प्रथम पाठ ।

(ईश्वर स्तुति)

प्रिय बालको ईश्वर 'सिद्ध' परमात्मा 'खुदा' 'रब्ब' 'गाड' (GOD) इत्यादि यह जो नाम हैं सब उस परमेश्वर के ही नाम हैं जो कि संसार के तमाम प्राणियों के भावों को जानता है परमात्मा सर्वज्ञ और अनंत शक्तिमान होने से वह हमारे अन्दर के सब भावों के जानने वाला है हम जो भी पुण्य पाप करते हैं वे सब उसे ज्ञात हो जाते हैं इसलिये यदि कोई भी बुरा या अच्छा काम हम कितना ही छुपा कर भी करें मगर वह उस से छुपा नहीं रहता वह सब कुछ जानता है इसलिये सदा उसका ही स्मरण करो और कोई भी बुरा काम न करो ताकि तुम्हारी आत्मायें पवित्र हों।

हे बालको यह भी याद रक्खो कि परमात्मा न किसी को मारता और न ही जन्म देता है और न ही वह

आप कच्छ मच्छ या और किसी रूप में खुद इस संसार में आता है वह तो इन बातों से निरलेप है न ही उसका इन से कोई सम्बन्ध है वह परमात्मा तो मुक्त रूप हमेशा सत चित्त आनन्द है ।

जो लोग यह कहते हैं कि वह जन्म लेता या अवतार धारण करके इस संसार में आकर दुष्टों का नाश करता है वह सब उस से अज्ञात हैं ईश्वर को क्या आवश्यकता है कि वह इन झगड़ों में पड़े इस लिये यह कहना कि यदि कोई मरजावे कि हे ईश्वर तू ने कृपा किया जो इसको मार दिया यह महा पाप है जन्म मरण आदि जो भी सुख दुख संसार में जीव भोगते हैं वह सब अपने २ कर्मों के आधीन है इस में किसी का कोई चारा नहीं है इस लिये ईश्वर को ऐसे कामों में दोष देना उलटा पाप का भागी बनना है सो ऐसा मत कहो कि दुख सुख ईश्वर ही देता है सुख दुख तो अपना केवल कर्तव्य ही है ऐसा समझ कर हे बालको नित्य प्रति ईश्वर का ही भजन करते रहो ताकि तुम्हें सच्चा सुख मिले उसका जाप करने से विघ्न दूर होजाते हैं शान्ति की प्राप्ति होती है । श्रेष्ठ आचार में आत्मा लग जाता है

जिस से उसको आत्म ज्ञान की प्राप्ति होजाती है सो इस लिये सिद्ध परमात्मा का ध्यान अवश्य करना चाहिये ।

द्वितीय पाठ

[गुरु भक्ति]

प्रियवर ! शान्तिपुर नगर के उपाश्रय में प्रातःकाल और सायंकाल में दोनों समय नगर निवासी प्रायः सब श्रावक लोग एकट्ठे होकर संवर, और सामायिक वा स्वाध्याय आदि धर्म क्रियाएं करते हैं जिस से उन लोगों को धर्म परिचय विशेष होरहा है स्वाध्याय के द्वारा हर-एक पदार्थ का यथार्थ ज्ञान होजाता है यथार्थ ज्ञान के होने पर धर्म पर दृढ़ता विशेष बढ़ जाती है स्वाध्याय करने वाला आत्मा उपयोग पूर्वक हर एक पदार्थ के स्वरूप को भली प्रकार से जान लेता है जब यथार्थ ज्ञान होगया तब उस आत्मा ने हेय, ज्ञेय, और उपादेय, के स्वरूप को भी जान लिया अर्थात् त्यागने योग्य, जानने योग्य, और ग्रहण करने योग्य, पदार्थों को जब जान गया

तब आत्मा सच्चरित्र में भी आरूढ़ होसकता है। अतः स्वाध्याय अवश्य करना चाहिये।

आज प्रातःकाल का समय है हर एक श्रमणोपासक अपने २ आसन पर बैठे हुए नित्यकर्म कर रहे हैं—कोई सामायिक कर रहा है कोई सम्वर के पाठ को पढ़ रहा है, कोई स्वाध्याय द्वारा अपने वा अन्य आत्माओं के संशयों को दूर कर रहा है।

इतने में बाबू-कपूरचन्द्रजी जैन बी०ए० अपने किए हुए सामायिक के काल को पूरा हुआ जानकर सामायिक की आलोचना करके शीघ्र ही आसन को बांध कर तय्यार होकर चलने लगे तब बाबू—हेमचन्द्रजी ने पूछा कि—आप आज इतनी शीघ्रता क्यों कर रहे हैं तब बाबू कपूरचन्द्रजी ने प्रति वचन में कहा कि—आज क्या आप को मालूम नहीं है कि श्रीगुरु महाराज पधारने वाले हैं।

हेमचन्द्र ! जब गुरुमहाराज पधारने वाले हैं तो फिर आप इतनी शीघ्रता क्यों करते हो यहां पर ही ठहरिये ! जिस से गुरु महाराज जी के दर्शन भी होजाएं।

कपूरचन्द्र ! गुरु महाराज के दर्शनों के लिए ही शीघ्रता कर रहा हूं ।

हेमचन्द्र ! जब गुरु महाराज के दर्शनों की उत्कण्ठा है तो फिर शीघ्रता क्यों करते हो ।

कपूरचन्द्र ! गुरु महाराज की भक्ति के लिए ।

हेमचन्द्र ! गुरु महाराज की भक्ति किस प्रकार करनी चाहिए ।

कपूरचन्द्र ! जब गुरु महाराज पधारें तब आगे उनको लेने जाना चाहिए । जब वह पधार जाए तब कथा व्याख्यान आदि कृत्यों में पुरुषार्थ करना चाहिए । जब वह आहार पानी के लिये कृपा करें तब उनको निर्दोष आहार देकर वा दिलवा कर लाभ लेना चाहिये । जब तक वह विराजमान रहें तब तक सांसारिक कार्यों को छोड़ कर उन से हर एक प्रकार के प्रश्नों को पूछ कर संशयों से निवृत्त हो जाना चाहिये । क्योंकि जब गुरु महाराज जी से प्रश्नों के उत्तर न पूछे जाएं तो भला और कौन सा पवित्र स्थान है जिस से सन्देह दूर होसके ।

हेमचन्द्र ! गुरु भक्ति से क्या होता है ।

कपूरचन्द ! प्रियवर ! गुरु भक्ति से-धर्म प्रचार बढ़ता है परस्पर संप की वृद्धि होती है बहुत सी आत्माएं गुरु भक्ति में लग जाती हैं जिस से गुरु भक्ति की प्रथा बनी रहती है और कर्मों की महा निर्जरा होजाती है अतएव ! गुरु भक्ति अवश्यमेव करनी चाहिये ।

हेमचन्द्र ! सखे ! जब गुरु इस उपाश्रय में पधार जाएंगे तब पूर्वोक्त बातें हो सकती हैं तो फिर बाहिर जाने की क्या आवश्यकता है ।

कपूरचन्द ! वयस्य ! जब गुरु पधारें तब उनको आगे लेने जाना जब वह विहार करें तब उनको भक्ति अनुसार बहुत दूर तक पहुंचाने जाना इस प्रकार भक्ति करने से नगर में धर्म प्रचार होजाता है फिर बहुत से लोग गुरुओं को पधारे हुए जान कर धर्म का लाभ उठाते हैं इस लिये ! अब स्वामी जी के पधारने का समय निकट होरहा है हम सब श्रावकों को उनकी भक्ति के लिए आगे जाना चाहिए तब बाबू हेमचन्द्रजी ने सब श्रावकों को सूचित कर दिया कि-स्वामी जी महाराज पधारने वाले हैं अतः हम सब श्रावकों को उनकी भक्ति के लिए आगे जाना चाहिये ।

हेमचन्द्र जी के ऐसे कहे जाने पर सब श्रावक इकट्ठे होकर गुरु महाराज जी के लेने को आगे चले तब जो जो श्रावक मार्ग में मिलते जाते थे वह सब साथ होते जाते थे जब मुनि महाराज बहुत ही निकट पधार गये तब लोगों ने गुरु महाराज जी के दर्शनों से अपनी आंखों को पवित्र किया। तब बड़े समारोह के साथ गुरु महाराज बहुत से अपने शिष्यों के साथ जैन उपाश्रय में पधारगये।

वहां पीठ (चौकी) पर विराजमान होकर लोगों को एक बड़ी ही रमणीय जिनेन्द्र स्तुति सुनाई उसके पश्चात् अनित्य भावना के प्रतिपादन करने वाला एक मनोहर पद पढ़कर सुनाया गया जिसको सुन कर लोग संसार की अनित्यता देख कर धर्म ध्यान की ओर रुचि करने लगे तब मुनि महाराज जी ने मंगली सुनाकर लोगों को प्रत्याख्यान करने का उपदेश किया तब लोगों ने स्वामी जी के उपदेश को सुनकर बहुत से नियम प्रत्याख्यान किये।

फिर दूसरे दिन उपाश्रय में जब श्रावक लोग वा जैनेतर लोग इकट्ठे हुए तब मुनि महाराजजी ने धर्म

विषय पर एक बड़ा मनोहर व्याख्यान दिया जिसको सुनकर लोग अत्यन्त प्रसन्न हुए क्योंकि वह व्याख्यान क्या था मानो अमृत की वर्षा थी तब उपाश्रय में लोगों ने बैठ कर विचार किया कि यदि इस प्रकार के व्याख्यान पबलिक में हो जायें तब जैन धर्म को प्रभावना भी हो सकती है और साथ ही जो लोग यहां पर नहीं आते उनको धर्म का लाभ भी हो सकता है।

जैन मण्डल ने इस सम्मति को स्वीकार करके नगर में पत्रों द्वारा सूचित किया कि प्रिय भ्रातृगण। हमारे शुभोदय से स्वामी जी.................................
महाराज यहांपर पधारे हुए हैं और आज दिन २ बजे से लेकर चार बजे तक स्वामी जी का "मनुष्य जीवन का उद्देश्य क्या है" इस विषय पर व्याख्यान होगा— अतः आप सर्व सज्जन जन व्याख्यान में पधार कर धर्म का लाभ उठाइये और हम लोगों को कृतार्थ कीजिये! जब इस लेख के पत्र नगर में वितीर्ण किएगये तब सैंकड़ों नर वा नारियें नियत समय पर व्याख्यान में उपस्थित होगए। उस समय स्वामी जी ने अपने व्याख्यान में मनुष्य जीवन के मुख्य दो उद्देश्य बतलाये— एक तो "सदाचार"

दूसरे "परोपकार" इन दोनों शब्दों की पूर्ण रीति से व्याख्या की" तब लोग बड़े प्रसन्न होते हुए स्वामी जी को चतुर्मास की विज्ञप्ति करने लगे परन्तु स्वामीजी ने इस विज्ञप्ति को स्वीकार नहीं किया तब लोगों ने कुछ व्याख्यानों के लिये अत्यन्त विज्ञप्ति की। स्वामीजी ने पांच व्याख्यान देने की विज्ञप्ति स्वीकार करली फिर उन्होंने धर्म विषय, अहिंसा विषय, स्त्री शिक्षा, विद्या विषय, कुरीतिनिवारण विषय, इन पांचों विषयों पर पृथक् २ दिन दो २ घंटे प्रमाण व्याख्यान दिये जिन को सुनकर लोग मुग्ध होगये बहुत से लोगों ने उन व्याख्यानों से अतीव लाभ उठाया। बहुत से लोगों ने स्वामी जी से अनेक प्रकार के प्रश्नों को पूछकर अपने २ शंशयों को दूर किया।

जब स्वामी जी के विहार करने का समय निकट आगया तब स्वामी जी ने विहार कर दिया उस समय सैंकड़ों लोग भक्ति के वश होते हुए स्वामीजी को पहुंचाने के वास्ते दूर तक गये। फिर स्वामीजी ने वहां पर भी उन लोगों को अपने मधुर वाक्यों से "प्रेम" विषय पर एक उत्तम उपदेश सुनाया और उसका फलादेश भी वर्णन किया

जिसको सुनकर लोग अत्यन्त प्रसन्न होते हुये स्वामी जी को वंदना नमस्कार करके अपने २ स्थानों में चले आए।

मित्र वरो ! गुरु भक्ति इसी का नाम है जिसके करने से धर्म प्रभावना और कर्मों की निर्जरा होजावे।

अनेक आत्मायें धर्म से परिचित होजायें। सो गुरु भक्ति सदैव करनी चाहिये गुरुओं का ध्यान भी अपने मन में सदैव रखना चाहिये जैसेकि जिस दिन गुरु देवों ने जिस नगर से विहार किया हो उसी दिन से ध्यान रखना कि वह कब तक यहाँ पधार जायेंगे। यदि किसी कारण वश से वह नियत समझे हुये समय पर न पधार सकें तब किसी द्वारा उनका समाचार लेना उसके अनुसार गुरु देव की फिर सेवा भक्ति करनी यह नियम प्रत्येक गृहस्थ का होना चाहिये।

यद्यपि ! गुरु देव अपनी वृत्तिके विरुद्ध कुछ भी काम नहीं करवाते किंतु गृहस्थों के सदा भाव उनके दर्शनों के बने रहने चाहियें। और उनके मुख से जिन वाणी सुनने के भी भाव सदैव होने चाहियें। सो यही गुरु भक्ति है।

तृतीय पाठ

(जैन सभा विषय

वर्द्धमान नगर के एक विशाल चौक में बड़ा ऊंचा एक भवन बना हुआ है जो कि उस बाजार में पहिले वही दृष्टि गोचर होता है उस समय "शान्ति प्रशाद" श्रावक नगर में भ्रमण करता हुआ वहां पर ही आ निकला एवं उस स्थान के पास गया तब उसने एक मोटे अक्षरोंमें लिखा हुआ साइनबोर्ड (Sign-board) देखा जब उसने उसको पढ़ा तब उसको मालूम होगया कि— यह जैन सभा का स्थान है क्योंकि—"साइनबोर्ड" पर लिखा हुआ था कि—

"श्री श्वेताम्बर (स्थानक वासी जैन सभा)"

"उसी समय शान्ति प्रशाद ने विचार किया कि" चलें ऊपर चल कर देखें कि इस नगर की जैन सभा की क्या व्यवस्था है इस प्रकार विचार करके वह ऊपर चला गया तब वह क्या देखता है कि जैन सभा के

सभासद्द बैठे हुये हैं और बहुत से लोग जैन वा अजैन भी आरहे हैं सभापति जी भी अपने नियत स्थान पर बैठे हुये हैं। सभा बड़ी ही सुसज्जित हो रही है 'मेज़' और 'कुरसी' भी लगी हुई है और "मेज़" पर बहुत सी पुस्तकें रक्खी हुई हैं। तब शान्ति प्रशाद ने पूछा कि– इस सभा के नियम क्या २ हैं और सभासद वा उपाधिधारी कितने हैं। उस समय सभापति ने उत्तर में कहा कि–यह सभा साप्ताहिक है जो प्रत्येक रविवार के दिन के छः बजे लगती है और सभापति "उपसभापति" "मन्त्री" "उपमन्त्री" "कोशाध्यक्ष" समाचार प्रदाता" इत्यादि सभी उपाधिधारी हैं और दो सौ के अनुमान सभासद्द हैं सभा की ओर से एक "जैन पाठशाला" भी खुली हुई है और एक "उपदेशक क्लास भी है" जिसमें अनेक उपदेशक तय्यार करके बाहिर धर्म प्रचार के लिये भेजे जाते हैं उन्हों के धर्म प्रचार के आये हुये पत्र प्रत्येक रविवार को सर्व सज्जनों को सुनाये जाते हैं और सभा का आय (लाभ) और व्यय (खर्च) भी सुनाया जाता है॥

सभा में अनेक विषयों पर व्याख्यान दिये जावे

हैं इतनी बातें होते ही सभा का काम आरम्भ किया गया सभा की भजन मण्डली ने बड़े सुन्दर भजन गाने आरम्भ करदिये जिनको सुनकर प्रत्येक जन हर्षित होता था। भजनों के पश्चात् सभापति अपने नियत किये हुये आसन पर बैठ गये। तब मंत्री जी ने बाहिर से आये हुये पत्रों को पढ़कर सुनाया जिनमें दो पत्र अतीव उपयोगी थे वह इस प्रकार सुनाये गये।

श्रीमान् मन्त्री जी जय जिनेन्द्र देव!

विनय पूर्वक सेवा में निवेदन है कि—आप की सभा के उपदेशक पण्डित........................... साहिब कल्ल दिन यहां पर पधारे उन का एक आम (प्रकट) व्याख्यान करवाया गया अन्यमतावलम्बियों के साथ ईश्वर कर्तृत्व विषय पर एक बड़ा भारी संवाद हुआ नियम विषय पूर्वक प्रबन्ध किया हुआ था उन की ओर से दो सन्यासी पूर्व पक्ष में खड़े हुए थे हमारे पण्डित जी उत्तर पक्ष में खड़े हुए थे सात दिन तक नियम वद्ध शास्त्रार्थ होता रहा अंत में उन सन्यासियों ने इस पूर्व पक्ष को उपस्थित किया कि फल प्रदाता ईश्वर

अवश्य है " क्योंकि—उसको फल देने की स्वतः ही स्फुरणा उत्पन्न होजाती है " इसके उत्तर में हमारे पंडित जी ने कहा कि—जब ईश्वर को आप सर्वव्यापक मानते हैं तब आप यह भी बतलाइये कि—स्फुरणा उस ईश्वर के एक अंश में होती है या सर्व अंशों में " यदि एक अंश में स्फुरणा होती है तब स्वतः न रही " यदि सर्व अंशों में स्फुरणा होजाती है तब फल तो एक जीव को देना था परन्तु मिल गया सब जीवों को' यह अच्छा पद्यता ईश्वरीय न्याय हुआ" और कर्मों का फल (दण्ड) तो इसलिए देना होता है कि—और लोग दुष्ट कर्म करने छोड़ दें परन्तु जब हम एक वेश्या की पुत्री को देखते हैं जो कि एक बड़े सुन्दर रूप को धारण किए होती है तब हम इस बात का विचार करने लगते हैं कि—यदि इसको परमात्मा ने ही जन्म दिया है तब तो परमात्मा ने अपने आप ही व्यभिचार को फैलाना चाहा क्योंकि—यदि वह ऐसा रूप न देता तो फिर लोग क्यों व्यभिचार करते यदि उस ने अपने किए हुए कर्मों के कारण से ऐसा रूप स्वयमेव प्राप्त किया है तो फिर परमात्मा को फल प्रदाता मानने की क्या अवश्यकता है" सो वह सन्यासी इस उत्त

पक्ष के खंडन करने में असमर्थ हो गए" सभापति ने जय की ध्वजा हमारे हाथ में दी–अनेक लोगों ने ईश्वर कर्तृत्व भ्रम को छोड़ दिया" अब यहां पर जैन सभा की स्थापना हो गई है।

प्रति रविवार सभा लगती है जिस से धर्म प्रचार खूब ही हो रहा है।

भवदीय—

"मन्त्री–जिनेश्वरदास–सिंहल द्वीप"

श्रीयुत मन्त्री जी जय जिनेन्द्र!

प्रार्थना है कि–आप की सभा के उपदेशक पण्डित श्रीयुत............................. यहां पर पधारे उन्हों का एक सार्वजनिक व्याख्यान "जैन संस्कार विधि" पर कराया गया सभा में लोगों की संख्या अतीव थी लोगों ने जैन संस्कार विधि को सुन कर अति हर्ष प्रकट किया।

और आनंद का विषय यह हुआ कि–लाला "प्रमोदचंद्र" जी ने अपने सुपुत्र "शान्ति कुमार का" जैन संस्कार विधि के अनुसार विवाह किया है और १००० सहस्र

रुपये आप के उपदेशक फंड को दान किये हैं जो भेजे जाते हैं कृपया पहुंच से कृतार्थ करें।

भवदीय—
मन्त्री–मणि द्वीप—

जब मन्त्री जी ने इन दोनों पत्रों को सुना दिया तब लोगों ने अति हर्ष प्रकट किया तब सभापति ने धर्म प्रचार विषय पर एक मनोहर व्याख्यान दिया जिस को सुन कर लोग अति प्रसन्न हुए। तदनु सभा की भजन मंडली ने एक मनोहर जिन स्तुति गाकर सभा का साप्ताहिक महोत्सव समाप्त किया इस महोत्सव को देख कर शान्ति प्रशाद जी बड़े प्रसन्न हुए और यह मन में निश्चय किया कि–हम भी अपने नगर में इसी प्रकार अनुकरण करतेहुये धर्म प्रचार करेंगे॥

चतुर्थ पाठ

(भवन जैन कन्या पाठ शाला)

आनन्द पुर नगर के एक बड़े पवित्र मौहल्ला में जैन कन्या पाठ शाला का स्थान है वहां लौकिक वा धार्मिक

दोनों प्रकार की शिक्षा दी जाती है साथ ही शिल्पकला भी योग्यता पूर्वक सिखलाई जाती है इस पाठशाला में सुयोग्य अध्यापकाएँ काम करती हैं कन्याओं की संख्या १०० सौ की प्रति दिन हो जाती है।

नगर में इस पाठ शाला की शिक्षा विषय चर्चा फैली हुई है कि—जैसी इस पाठ शाला की पढ़ाई वा प्रवन्ध है ऐसा और किसी पाठ शाला का प्रवन्ध नहीं है।

प्रायः हर एक कन्या वार्षिक महोत्सव में पारितोषिक लेती है और विदुषी बन कर यहां से निकलती हैं।

आज पाठशाला के वार्षिक महोत्सव का दिन है प्रत्येक कन्या अपने पवित्र वेष को धारण करके आ रही हैं चारों ओर झंडियें लगी हुई हैं पाठ शाला में "दया सूचक" वैराग्य प्रदर्शक 'मनोरंजक" अनेक मनोहर चित्र लटक रहे हैं पाठ शाला के कर्मचारी—सभा पति आदि भी बैठे हुए हैं तब उसी समय "जिनेन्द्रकुमार" और "देवकुमार" दोनों मित्र भी वहां पहुंच गए आपने

श्रीयुत मन्त्री जी की आज्ञा लेकर पाठ शाला में प्रवेश किया जब आप ने उस भवन को देखा तब आप चकित रह गए और उन कन्याओं की योग्यता देख कर बड़े ही प्रसन्न हुये—सैंकड़ों कन्याएं जिनस्तुति मनोहर स्वर से गा रही हैं बहुत सी कन्याएं धर्म शास्त्र की पढ़ाई में पारितोषिक ले रही हैं श्री भगवान् महावीर स्वामी की जय बोल रही हैं।

नाटक समाप्त होने के पीछे एक "सरस्वती" नाम वाली कन्या ने जिनेन्द्र स्तुति पढ़ी है परन्तु उसी स्तुति में मनुष्य जीवन के उद्देश का फोटू (चित्र) खींच दिया है जिस से उसने वह पारितोषिक भी प्राप्त किया है उस के पश्चात् एक कन्या पद्मावती ने खड़े होकर स्त्री समाज की ओर लक्ष्य देकर निम्न प्रकार से अपने मुख से उद्गार निकाले, जैसे कि—

मेरी प्यारी बहनो! आपको यह भली भांति मालूम ही है कि— आज एक महा शुभ दिन है जो प्रति वर्ष में यह दिन एक ही वार आता है इसमें हमारी वार्षिक परीक्षा ली जाती है स्त्री समाज की वर्तमान में जो दशा

होरही है वह अवश्य शोचनीय है कारण कि हमारी स्त्री समाज अशिक्षित प्रायः बहुत है इसी कारण से वह अवनति दशा को प्राप्त हो रही है जो पूर्व समय में जिस स्त्री को रत्न कहा जाताथा आज वह स्त्रीस्त्रीसमाज में भार रूप हो रही है उसका मूल कारण यह है कि—मेरी बहनें ! अपने कर्तव्यों को भूल गई हैं केवल 'रोष' 'पति से लड़ाई' 'अति तृष्णा सासू से विरोध' तथा जो पड़ोसी हैं उनसे अनमेल सदा रखती हैं—सारा दिन घर के काम काज को छोड़ कर व्यर्थ निंदा, चुगली, हर एक बात में छल व झूठ इत्यादि व्यर्थ बातों से दिन व्यतीत करती हैं।

जो शास्त्रीय शिक्षाओं से जीवन पवित्र बनाना था उन को छोड़ ही दिया है भला पति से कलह तो रहता ही था साथ ही जो संतान उत्पन्न हुई है उस के साथ भी बर्ताव अच्छा देखने में कम आता है जैसे—पुत्रों को अयोग्य, गालियें देना, कन्याओं को असभ्य वचन बोलने, गर्भ रक्षा की यह दशा देखने में आती है कि—चुल्ले की मिट्टी, कोयले, स्वाहा, कारिक, पवित्र पदार्थों

के स्थान पर यह खाने में आते हैं, सारा दिन भैंस की तरह लेटे रहना यदि शिक्षा दी जावे तो लड़ाई करने में ढील ही क्या है।

कभी वह समय था कि-हमारी बहनें! पति का साथ देती थीं। सासू सुसरे को देव की नाईं पूजती थीं। घर की लक्ष्मी कहलाती थीं, सुख दुःख में सहायक बनती थीं, उनकी कृपा से घर एक स्वर्ग की उपमा को धारण किए रहता था।

यदि पति किसी कारण से घबराहट में भी आ जाता था तो वह घर में आकर स्वर्गीय आनन्द मानता था। आज यदि पति घर में शान्ति धारण किए हुए भी आता है तो घर में आते ही भाड़ की आग के समान तप्त हो जाता है। कारण कि—हमारी बहनें! आज कल खान पान की भूखी हैं। वस्त्रों की भूखी हैं। आभूषणों की भूखी हैं। एकान्त रहने की भूखी हैं। मान की भूखी हैं। इतना ही नहीं किन्तु लड़ाई की भूखी तो बहुत ही हैं। जिस से घर वाले या मुहल्ले वाले सब तंग आजाते हैं यह सब कारण हमारा समाज के अवनति के ही हैं।

जब लौकिक कार्यों में ऐसी दशा है तो भला धर्म विषय तो कहना ही क्या है। जैसे कि—घर के काम काज हमें बिना देखे न करने चाहिएं। खान पान के पदार्थ भी बिना देखे ग्रहण न करने चाहिएं। जैसे कि—ऐसी बहुत सी बहनें! दाल, शाक, वा चून, आदि के पकाते समय, कोड़ो, सुसरी, आदि जीवों को न देखती हुई उन्हें भी शाक आदि पदार्थों के साथही प्राणों से विमुक्त करदेती हैं। जिस से खाना ठीक नहीं रहता और कई प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। अतः मेरी प्यारी बहनो! हमें हर एक कार्य में सावधान रहना चाहिये। हमारा पतिव्रत धर्म सर्वोत्कृष्ट है जैसे हर एक प्राणी को अपने जीवन की इच्छा रहती है। उसी प्रकार हम को अपना जीवन भी पवित्र बनाना चाहिये। जिससे कि—हम औरों के लिये आदर्श रूप बन जायें। पवित्र जीवन धर्म से ही बन सकता है सो हम को धर्म कार्यों में आलस्य न करना चाहिये। वजाकि—सम्वर,—सामायिक, प्रतिक्रमण पोषध, दया, आदि शुभ क्रियाएं करनी चाहियें मुनि महाराजों के वा साध्वियों के, नित्यप्रति दर्शन करने चाहियें और उन के व्याख्यान नियम

पूर्वक सुनने चाहियें—जो मिथ्यात्व के कर्म हैं जैसे—शीतला पूजन, देवी पूजन, मढिया पूजन, श्राद्ध कर्म, इत्यादि कर्मों से चित्त हटाना चाहिये । पुत्र जन्म, विवाह आदि शुभ कार्यों में जो धार्मिक संस्थाओं को दान किये जाते हैं साथ ही रजो हरण, वा रजो हरणी, मुख वस्त्रिका, आसन, माला, इत्यादि धार्मिक उपकरणों का दान भी करना चाहिये जिस से धार्मिक काय सुख पूर्वक हो सकें । फिर सामायिकादि कर के वह समय स्वाध्याय वा ध्यान में ही लगाना चाहिये । मुझे शोक से कहना पड़ता है कि—मेरी वहुत सी वहने ! नवकार मन्त्र का पाठ भी नहीं जानतीं हैं । और साधु वा आर्याओं के दर्शन तक भी नहीं करतीं इस लिये । मैं और कुछ न कहती हुई अपनी प्यारी वहनों से अन्तिम यही प्रार्थना कर के वैठती हूं कि—आप अपना पवित्र जीवन शास्त्रीय शिक्षाओं से अलंकृत करें । जिस से हम औरों के लिये आदर्श वन जायें क्योंकि—श्री भगवान् ने हम को चारों तीर्थों में एक तीर्थ रूप वतलाया है जैसे कि—साधु, साध्वी, श्रावक, और श्राविका, सो हम को तीर्थ ही वनना चाहिये ।

जब पद्मावती देवी का भाषण हो चुका तब श्रीमती विद्यावती देवी ने इस भाषण का अनुमोदन किया अनुमोदन क्या था वह एक प्रकार का पवित्र पुष्पों का हार गुंथा हुआ था। उस के पश्चात् "शान्ति देवी" उठ कर इस प्रकार कहने लगी। कि-मेरी प्यारी बहनों वा माताओ! मैं आप का अधिक समय न लूंगी मैं अपनी वक्तृता को शीघ्र पूर्ण करूंगी—क्योंकि—श्रीमती "पद्मावती" देवी ने जो कुछ स्त्री समाज का दिग्दर्शन कराया है वह बड़े ही उत्तम शब्दों में और संक्षेप में वर्णन किया है जिस का सारांश इतना ही है कि-हमें गृहस्था वास में रहते हुए प्रेम से जीवन निर्वाह करना चाहिये जैसे एक राजा ने अपनी सुशीला कुमारी से पूछा। कि-हे पुत्री! मैं तुम्हारा विवाह संस्कार करना चाहता हूं किन्तु मुझे तीन प्रकार के वर मिलते हैं जैसे कि-रूपवान्! विद्वान्! और धनवान्! इन तीनों में से जिस पर तेरा विचार हो सो तू कह तब कन्या ने इस के उत्तर में कहा कि-हे पिता जी मुझे तीनों की इच्छा नहीं है। तब पिता ने फिर कहा कि-हे पुत्री! तेरी इच्छा किसपर है। उसने फिर प्रतिवचन में कहा कि-

पिता जी ! जो मेरे से "प्रेम,, करे मुझे तो उसी की इच्छा है" सो इस कहानी का सारांश इतना ही है कि—हर एक कार्य प्रेम से ठीक बन सकता है-प्रेम से ही,, यह संस्था कार्य कर रही है इस का हिसाबकिताव इस प्रकार से है इसतरह संस्था का पूर्ण वृतान्त कह चुकने पर शान्ति देवी ने यह भी कहा कि—हमें जो स्त्रियां किसी प्रकार का दान पुत्र उत्पन्न होने पर या विवाह अथवा मृत्यु आदि संस्कारों या सम्वत्सरी आदि पर्वों पर देती हैं "हम उनसे समायिक करने की "पोथियां,, "आनु पूर्वियां" "आसन" "रजोहरनियां,, "मुखवास्त्रकायें" माला" आदि मंगवाकर स्त्रियों में ही बांट देती हैं,, और जो जैन विधवा,, वहनें जो कि—हरतरह से अशक्त हैं उनको सहायतार्थ कुछ दे देती हैं इस प्रकार यह संस्था काम कर रही है सो जिस वहन को चाहिये वह धर्म पुस्तकें और सामायिक करने का सामान ले सकती हैं और जो जैन विधवा स्त्री सहायता के योग्य हो उस का पता हमें देकर उसको सहायता पहुंचा सकती हैं इस प्रकार शान्ति देवी के कहे चुकने पर फिर सभापति ने यथा योग्य सब कन्याओं को पारितोषिक देकर वार्षिक महोत्सव समाप्त

किया जय ध्वनि के साथ यहोत्सव मनाया गया इस दृश्य को देखकर जिनेन्द्र कुमार" वा" देव कुमार" बड़ेही प्रसन्न हुए और उन्हों ने निश्चय किया कि हम भी अपने नगर में इसी प्रकार जैन कन्या पाठशाला स्थापन करके धर्मोन्नति करें क्योंकि धर्मोन्नति करने का यह बड़ा ही उत्तम मार्ग है इस के द्वारा धर्म प्रचार भली भांति से हो सकता है।

पांचवा पाठ

(जैन सूत्रानुसार मुहूर्तादि के नाम)

प्रियवरो ! समय विभाग करने के लिये गणित विद्या की आवश्यकता पड़ती है सो गणित विद्या का नाम ही ज्योतिषः शास्त्र है यद्यपि गणित एक साधारण शब्द है किन्तु जब खगोल विद्या की ओर ध्यान दिया जाता है तब चांद सूर्य ग्रह आदि की गमन क्रिया की गणित द्वारा काल संख्या मानी जाती है फिर उन ग्रहों की राशिएं आदि के देखने से गणित के द्वारा शुभाशुभ फल का ज्ञान भी हो जाता है परन्तु यह बड़ा गहन विषय है किन्तु यहां पर तो केवल मुहूर्त्त आदि के ही सूत्रानुसार नाम

दिए जाते हैं जिस से उन मासादि के नाम विद्यार्थियों के कण्ठास्थ हो जाएं। दिन रात के तीस महूर्त्त होते हैं (मुहूर्त्त दो घड़ी के कालका नाम है) उनके निम्न लिखिता नुसार नाम बतलाए गए हैं। जैसे कि–रौद्र १ श्रेयान २ मित्र ३ वायु ४ सुपीत ५ अभिचन्द्र ६ माहेन्द्र ७ बलवान् ८ ब्रह्मा ६ बहुसत्य १० ईशान ११ त्वष्टा १२ भाविता-त्मा १३ वैश्रवण १४ वारुण १५ आनन्द १६ विजय १७ विश्वसेन १८ प्राजापत्य १६ उपशम २० गन्धर्व २१ अग्निवेश्य २३ शतवृषभ २२ आतपवान् २४ अमम २५ ऋणवाण २६ भौम २७ वृषभ २८ सवार्थ २६ राक्षस ३० इस प्रकार तीस मुहूर्त्तों के नाम बतलाए गए हैं।

एक पक्ष के पंचदश दिन होते हैं सो पंचदश दिवसों के नाम यह हैं जैसे कि–पूर्वाङ्ग १ सिद्धमनोरम २ मनोहर ३ यशो भद्र ४ यशोधर ५ सर्वकाम समृद्ध ६ इन्द्र मूर्द्धाभिषिक्त ७ सौ मनस ८ धनञ्जय ६ अर्थसिद्ध १० अभिजात ११ अत्यशन १२ शतञ्जय १३ अग्नीवेश्मा १४ उपशम १५ जब दिवसों के नाम हैं तब पंच दश रात्रियों के नाम भी होने चाहिए इस न्याय को अवलम्ब न करके उन रात्रियों के नाम इस प्रकार से बतलाए हैं

जैसे कि—उत्तमा १ सुनक्षत्रा २ एलापत्या ३ यशोधरा ४ सौमनसी ५ श्री सम्भूता ६ विजया ७ वैजयन्ती ८ जयन्ति ९ अपराजिता १० इच्छा ११ समाहारा १२ तेजा १३ अति तेजा १४ देवानन्दा १५।

इस प्रकार वर्णन करते हुए साथ में यह भी वर्णन कर दिया है कि दिन और रात्रियों की तिथीयें भी होती हैं वह इस प्रकार से हैं जैसे कि दिवसों की तिथियें यह हैं! नन्दा १ भद्रा २ जया ३ तुच्छा ४ पूर्णा ५ इन को तीन वार गिनने से यही पंच दश दिवस तिथियें होती हैं।

पंच दश रात्रि तिथियें यह हैं जैसे कि—अग्रवती १ भोगवती २ यशोमती ३ सर्वसिद्धा ४ शुभनामा ५ इन को तीन वार गिनने से यही पंच दश रात्रि तिथियें कही जाती हैं। और एक वर्ष के बारह मास होते हैं उनके नाम दो प्रकार से कथन किए गएहैं जैसे कि—लौकिक—और लोकोत्तर—जो लोक में सुप्रसिद्ध हों उन्हें लौकिक नाम कहते हैं जो केवल शास्त्रों में ही प्रसिद्ध हों उन्हीं का नाम „लोकोत्तर,, नाम है। सो लौकिक नाम बारह

मासों के यह हैं जैसे कि–श्रावन १ भाद्रव २ आश्विन ३ कार्त्तिक ४ मृगशीर्ष ५ पोष ६ माघ ७फाल्गुण ८ चैत्र ९वैशाख १० ज्येष्ठ ११ आषाढ़ १२ अपितु लोकोत्तर नाम यह है जैसे कि— अभिनन्द १ सुप्रतिष्ठ २ विजय ३ प्रीतिवर्द्धन ४ श्रेयान् ५ शिव ६ शिशिर ७ हैमवान् ८ वसन्त मास ९ कुसुम संभव १० निदाघ ११ वन विरोधी (वन विरोध) १२ यह बारह मास लोकोत्तर कहे जाते हैं अपितु सूर्य प्रज्ञप्ति सूत्र के दशवें प्राभृत के उन्नीसवें प्राभृत प्राभृत की टीका में लिखा है कि–"प्रथमः श्रावणरूपोमासो अभिनन्दः इत्यादि इस तरह से यह सिद्ध होता है कि–जिस को लोक पक्ष में श्रावण मास कहते हैं उसी को जैन मत में "अभिनन्द" नाम से लिखा है इसी क्रम से हर एक मास के विषय में जानना चाहिये ।

जो कि नीचे दिये हुये कोष्ठक से जान लीजिये।

लौकिक मास	जैन मास
१ श्रावण	१ अभिनन्द
२ भाद्रवपद	२ सुप्रतिष्ट
३ आश्विन	३ विजय
४ कार्तिक	४ प्रीतिवर्द्धन
५ मृगशीर्ष	५ श्रेयान्
६ पौष	६ शिव
७ माघ	७ शिशिर
८ फाल्गुण	८ हैमवान्
६ चैत्र	६ बसन्त मास
१० वैशाख	१० कुसुम सभव
११ ज्यैष्ठ	११ निदाघ
१२ आषाढ़	१२ वन विरोधी— वा वन विरोध

और जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति में—"अभिनन्द" के स्थान में "अभिनन्दित" कहा गया है "वनविरोधी" के स्थान

पर "वनविरोह" "वनविरोध" इस प्रकार से लिखा गया है परन्तु "अभिनन्दित" श्रावण मास का ही लोकोत्तर नाम वर्णन किया हुआ है जैसे कि—"प्रथमः श्रावणोऽभिनन्दित" द्वितीयः प्रतिष्ठितः इत्यादि श्रावण मास को ही अभिनन्द वा अभिनन्दित कहते हैं इसी प्रकार भाद्रव को कहा जाता है बारह मासों के नाम इसी प्रकार जानने चाहिये। लौकिक मास नक्षत्रों के आधार पर बने हुए हैं जैसेकि—श्रावण नक्षत्र के कारण से "श्रवण" "भाद्रवपद से" "भाद्रव" इत्यादि किन्तु लोकोत्तर मास ऋतुओं के आधार पर कहे हुए हैं जैसे प्रावृट ऋतु के दो मास इसी प्रकार अन्य ऋतुओं के दो दो मास गिन कर बारह मास हो जाते हैं।

यद्यपि आज कल सम्वत्सर का आरम्भ चैत्र मास से किया जाता है परन्तु प्राचीन समय में सम्वत्सर का आरम्भ श्रावण मास से होता था इस का कारण यह था कि—प्राचीन समय में सायन मत के अनुसार कार्य होता था जैसे कि— जब सूर्य दक्षिणायण होते थे तब ही सम्वत्सर का आरम्भ हो जाता था और "रवि" सोम"

मंगल" बुध" बृहस्पति" शुक्र" शनैश्चर" इन वारों का प्राचीन ज्योतिष् शास्त्रों में नाम नहीं पाया जाता परन्तु जो अर्वाचीन काल के ग्रन्थ बने हुये हैं उन्हों में इन वारों का उल्लेख अवश्य किया हुआ है इस का कारण विद्वान् लोग यह बतलाते हैं कि-जब से हिन्दुस्तान में यवन लोगों का आगमन हुआ है तभी से इन वारों का इस देश में प्रचार हुआ है।

पहिले से लोग दिनों वा तिथियों से ही काम लिया करते थे। और जो चांद वा सूय को ग्रहण लगता है उसका कारण यह है जैन शास्त्रों में दो प्रकार के राहू वर्णन किए गए हैं जैसे "कि-नित्य राहु" और पर्व राहु नित्यराहु तो चांद के साथ सदैव काल रहता है जो कृष्ण पक्ष में चांद की कला को आवरण करता जाता है शुक्ल पक्ष में कलाओं को छोड़ देता है उसी के कारण से कृष्ण पक्ष वा शुक्ल पक्ष कहे जाते हैं। पर्व राहु चांद वा सूर्य दोनों को ही लग जाते हैं राहु का विमान कृष्ण रंग का है इस लिए उस की छाया उन्हों पर जा पड़ती है लोग कहते हैं चांद वा सूय को ग्रहण लग गया है किंतु

"लोग भाषा में" ग्रहण कहा जाता है वास्तविक में "राहु" के विमान की प्रतिच्छाया ही होती है और कुछ नहीं होता जो लोग यह कहते हैं कि ! चांद ऋणी है इस लिए राहु उस को पकड़ता है वा पृथ्वी की छाया चांद वा सूर्य पर पड़ती है इस लिए चांद वा सूर्य को लोग पक्ष में ग्रहण लग गया ऐसे कहा जाता है सो यह कथन जैन सूत्रानुसार प्रमाणिक नहीं है सूत्रों में तो उक्त ही कथन को स्वीकार किया गया है विद्यार्थियों को योग्य है कि-वेह जैन शास्त्रादि को स्मरण करके वेह अपने वर्ताव में लावें कारण कि-जब इंग्रेज़ वा यवन लोगों के मासों के नाम काम में लाए जाते हैं तो भला अपने श्री जिनेंद्र देव के प्रति पादन किए हुए जैन मासों के नाम क्यों न व्यवहार में लाने चाहिए ! अपितु अवश्य में वही लाने चाहिए ॥

और यदि सम्पूर्ण जोतिष चक्र का स्वरूप जानना होवे तो "चन्द्रप्रज्ञप्ति," "सूर्य प्रज्ञप्ति" जंबू "द्वीपप्रज्ञप्ति", "विवाह व्याख्याप्रज्ञप्ति" इत्यादि शास्त्रों का नियमपूर्वक स्वाध्याय करना चाहिए ॥

छटा पाठ

साधु वृत्ति

सज्जनों तुम भली प्रकार जैन धर्म शिक्षावली के चौथे भाग में गृहस्थ सम्बन्धी गृहस्थों का धर्म क्या है पठन कर चुके हो मगर अब तुम्हें हम यहां पर चंद बातें मुनियों के धर्म के बारे में बतलावेंगे यद्यपि मुनियों की भी कुछ वृत्ति उसी भाग में दरशा चुके हैं तोभी मोटी २ आवश्यक बातें मुनियों सम्बन्धी जानने योग्य फिर यहां पर लिखते हैं।

यह बात तो संसार में निरविवाद प्रायः सिद्ध ही है कि जैन मुनियों जैसी अनिस्पृह और सच्ची साधु वृत्ति अन्य साधुओं में नहीं है जैन साधु जब से जैन मुनि का वेष धारण करते हैं तब से ही हर प्रकार के कष्टों को सहन करते हुये केवल धर्म क्रिया और संसार के उपकार के लिये ही अपने जीवन को व्यतीत करते हैं लोग अक्सर उन्हें मत द्वेष के कारण से तरह तरह के निरमूल दोष देते और उन्हें अप शब्द भी कहते हैं परन्तु यह शांत

रहते हुये उन्हें भी धर्म का ही उपदेश देते हुये अपने ५ महाव्रत रूप धर्म का पालन करते हैं जो इन्हीं के लिये जैन सूत्रों में बतलाये गये हैं क्योंकि हर एक जीव शान्ति की खोज में लगा हुआ है अपनी समाधि की इच्छा रखता है किन्तु पूर्ण ज्ञान न होने के कारण से वेद पृथक् २ मार्ग का अन्वेषणा करते हैं।

जैसे किसी ने शान्ति वा "समाधि" धन की प्राप्ति होने से ही समझी हुई है इसी लिये वह सदैव धन इकट्ठे करने में ही लगा हुआ है किसी ने समाधि विषय विकार में जानी हुई है इस लिये "वह काम भोगों में आसक्त हो रहा है" किसी ने समाधि अपने परिवार की वृद्धि ही में मानली है अतः वह इसी धुन में लगा हुआ है "किसी ने समाधि" सांसारिक कलाओं के जानने में मानली है सो वह उसी कला के ध्यान में लगा रहता है तथा किसी ने "व्यापार" जूआ" मांस" मदिरा" शिकार" वेश्यासंग" पर स्त्री सेवन" चोरी" इत्यादि कामों में ही सुख मान लिया है इस लिये वेह पूर्वोक्त कामों में ही लगे रहते हैं वा बहुत से लोगों ने अनार्य

क्रियाओं के करने में ही वास्तविक में शान्ति समझी है इसी लिये वेह अनार्य कर्मों में ही लगी रहते हैं।

वास्तव में उन लोगों ने पूर्ण प्रकार से शान्ति के मा को जाना नहीं इस लिये वेह शान्ति की खोज में भटकते फिरते हैं क्योंकि—आशावान् को समाधि कभी भी नहीं प्राप्त हो सक्ती है जब समाधि की प्राप्ति होगी "निराश को होगी" क्योंकि—संसार में आशा का ही दुःख है जब किसी पदार्थ की आशा ही नहीं तो भला दुःख कहां से उत्पन्न हो सकता है।

निराश आत्मा ही शान्ति को आनन्द का अनुभव कर सक्ते हैं, अपितु संसार पक्ष से निराश होना चाहिए धर्म पक्ष से नहीं किन्तु धर्म पक्ष में वह सदैव कटिबद्ध रहता है—

सर्व संसार के बन्धनों से छूटा हुआ भिक्षु जिस आनन्द का अनुभव कर सकता है उस आनन्द के शतांशवें भाग का चक्रवर्ती राजा भी अनुभव नहीं कर सकता।

क्योंकि—वह भिक्षु योग मुद्रा द्वारा अपनी आत्मा का अनुभव वा दर्शन करता है आत्मा के दर्शन करने के लिए उस मुनि को पांच समिति" तीन गुप्तियें भी साधन रूप धारण करनी पड़ती हैं।

पांच महाव्रत निम्न प्रकार से हैं॥

अहिंसा महाव्रत

प्राणी मात्र से प्रीति (मैत्री) करने के लिए और सब जीवों की रक्षा के वास्ते श्री भगवान ने "प्राणातिपात विरमण" महाव्रत प्रति पादन किया है उसका भाव यह है कि—साधु मन वचन और काय से हिंसा करे नहीं औरों से हिंसा करावे नहीं हिंसा करने वालों की अनुमोदना भी न करे यह अहिंसा व्रत सर्वोत्कृष्ट महाव्रत है जिसने इस का ठीक पालन किया वह आत्मा अपना सुधार कर सकता है वह सब का हितैषी है अहिंसा प्राणी मात्र की माता है इस की कृपा से अनंत आत्मा मोक्ष होगए हैं वर्तमान में बहुत से आत्मा मोक्ष प्राप्त कर रहे हैं भविष्यत काल में अनंत आत्मा मोक्ष प्राप्त करेंगे जिस का शत्रु वा

भिन्न परसमय भाव होता है अहिंसा धर्म पालन करने वाले प्राणी की यही पूर्ण परीक्षा है कि–यदि हिंसक जीव भी उसके पास चले जावें तो वेह अपने स्वभाव को छोड़ कर दयालू भाव धारण कर लेते हैं।

सत्य महाव्रत–

अहिंसा महाव्रत को पालन करते हुए द्वितीय सत्य महाव्रत भी पालन किया जाता है जिस आत्मा ने इस महाव्रत का आश्रय ले लिया है वह सर्व कार्यों में सिद्धि कर सकता है क्योंकि सत्य में सर्व विद्या प्रतिष्ठित हैं सत्य आत्मा का प्रदर्शक है तथा आत्मा का अद्वितीय मित्र है इस की रक्षा के लिए ! क्रोध–भय–लोभ–हास्य इन कारणों को छोड़ देना चाहिए। साधु मन वचन काय से मृषा वाद को न बोले न औरों से बोलाए जो मृषावाद (झूठ) बोलते हैं उनकी अनुमोदना भी न करें क्योंकि असत्य वादी जीव विश्वास का पात्र भी नहीं रहता अतएव ! इस महाव्रत का धारण करना महान् आत्माओं का कर्तव्य है।

दत्त महाव्रत

सत्य को पालन करते हुए चौर्य परित्याग तृतीयमहा व्रत का पालनभी सुख पूर्वक हो सकता है यह महाव्रत शूर वीर आत्मा ही पालन कर सकते हैं विना आज्ञा किसी वस्तु का न उठाना यही इस महा व्रत का मुख्य कार्य है किसी स्थान पर कोई भी साधु के लेने योग्य पदार्थ पड़ा हो उसे विना आज्ञा न ग्रहण करना इस महाव्रत का यही मुख्योपदेश है मन वचन काय से आप चोरी करे नहीं औरों से चोरी कराए नहीं चोरी करने वालों की अनु-मोदना भी न करे तथा चोरी करने वालों की जो दशा लोक में होती है वह सब के प्रत्यक्ष है इस लिए साधु महात्मा इस महा व्रत को विधि पूर्वक पालन करते हैं।

ब्रह्मचर्य महाव्रत।

दत्त महा व्रत का पालन ब्रह्मचारी ही पूर्णतया कर सकता है इस लिये चतुर्थ ब्रह्मचर्य महाव्रत कथन किया गया है ब्रह्मचारी का ही मन स्थिर हो सकता है ब्रह्म-चारी ही ध्यान अवस्था में अपने आत्मा को लगा सकता है।

सर्व अधर्मों का मूल मैथुन ही है इसका त्याग करना शूरवीर आत्माओं का ही काम है इस से हर एक प्रकार की शक्तियें (लब्धियें) प्राप्त हो सकती है यह एक अमूल्य रत्न है।

सब नियमों का सारभूत है ब्रह्मचारी को देव गण भी नमस्कार करते हैं जगत् में यह महाव्रत पूजनीय माना जाता है।

अतएव ! मन वाणी और काय से इस को धारण करना चाहिये क्योंकि—चारित्र धर्म का यह महाव्रत प्राण भूत है निरोगता देने वाला है चित्त की स्थिरता का मुख्य कारण है इस के धारण करने से हर एक गुण धारण किये जा सकते हैं।

इस लिये ! मुनियों के लिये यह चतुर्थ महाव्रत धारण करना आवश्यकीय बतलाया गया है सो मुनि जन—आप तो मैथुन सेवन करें नहीं औरों को इस क्रिया का उपदेश न करें।

जो मैथुन क्रिया करने वाले जीव हैं उन के मैथुन की अनुमोदना न करे मनुष्य—देव—पशु—इन तीनों के

मैथुन की मन में भी आशा न करे तब ही यह महाव्रत शुद्ध पल सकता है।

अपरिग्रह महाव्रत।

साथ ही ब्रह्मचारी अपरिग्रह महाव्रत का भी पालन करे क्योंकि—धन धान्य वा मूर्च्छा से रहित होना यही अपरिग्रह महाव्रत है ग्राम वान गर आदि में जो वस्तु पड़ी हो उस का ममत्व भाव न करना वही अपरिग्रह महाव्रत होता है साधु जन मन वचन और काय से धन का सेवन न करे अतएव ! आप धन पास रक्खे नहीं औरों को रखने का उपदेश देवे नहीं जो धन में ही मूर्छित रहते हैं उन की अनुमोदना भी न करे इस महाव्रत के धारण करने से अकिंचन वृत्ति वाला हो जाता है। जिस से वह निर्भय हो कर विचरता है अपरिग्रह वाले मनुष्य का जीवन उच्च कोटि का बन जाता है वह सदैव परोपकार करने में समर्थ और समाधियुक्त होता है यावन्मात्र संसार पक्ष में क्लेश उत्पन्न होने के कारण हैं उन में मुख्य कारण परिग्रह का संचय है वा ममत्व भाव है सो मुनि अपरिग्रह वाला हो कर अपने आत्मा की खोजना करे।

रात्रि भोजन परित्याग ।

फिर जीव रक्षा के लिये वा संतोष वृत्ति के लिये रात्रि भोजन कदापि न करे रात्रि भोजन विचार शीलों के लिये अयोग्य बतलाया गया है रात्रि भोजन करने में अहिंसा व्रत पूर्ण प्रकार से नहीं पल सकता अतः दया वास्ते निशा भोजन त्यागना चाहिये तथा पुनि अन्न की जाति, पानी की जाति, मिठाई आदि की जाति, चूर्ण आदि जाति, इन चारों प्रकारों में से कोई भी आहार न करे

इतना ही नहीं किन्तु सूर्य की एक कला दब जाने से भी रात्रि भोजन के त्याग में दोष लग जाता है यदि रात्रि भोजन परित्याग वाले जीव को रात्रि में मुख में पानी भी आजावे फिर वह उस पानी को बाहिर न निकाले फिर भी उसको दोष लग जाता है इस लिये रात्रि भोजन में विवेक भली प्रकार से रखना चाहिये ।

भिक्षु रात्रि भोजन आप न करे, औरों से न कराये, जो रात्रि में भोजन करते हैं उन की अनुमोदना

भी न करे यह व्रत भी मन वचन और काय से शुद्ध पालन करे क्योंकि– यह सब साधन आत्मा की शुद्धि के लिये ही हैं ।

ईर्या समिति ।

फिर यत्ना के साथ गमन क्रिया में प्रवृत होना चाहिये क्योंकि–यत्न क्रिया ही संयम के साधन हारी है दिन को विना देखे नहीं चलना रात्रि को रजो हरण के विना भूमि प्रमार्जन किए नहीं चलना क्योंकि–धर्म का मूल यत्न ही है इस लिये अपने शरीर प्रमाण आगे भूमि को देख कर पैर रखना चाहिये । और चलते हुए बातें न करनी चाहिये । खान पान करना न चाहिये । स्वाध्याय भी न करना चाहिये । ऐसे करने से यत्न पूर्ण प्रकार से नहीं रह सकता यद्यपि गमन क्रिया का निषेध नहीं किया गया किन्तु अयत्न का निषेध अवश्य किया हुआ है ।

भाषा समिति ।

जब गमन क्रिया में अयत्न का निषेध किया गया है तो बोलने का भी यत्न अवश्य होना चाहिये । मुनि

भाषा समिति के पालन करने वाला बिना विचार किये कभी भी न बोले तथा जिस शब्द के बोलने में पाप लगता होवे और दूसरा दुःख मानता होवे इस प्रकार की भाषा मुनि न बोले यद्यपि भाषा सत्य भी है किन्तु उस के बोलने से यदि दूसरा दुःख मानता होवे तो वह भाषा मुख से न निकालनी चाहिये जैसे काणे को काणा कहना इत्यादि भाषाएं न बोलनी चाहिये।

क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, हास्य, भय, मोह, इन के वश होकर वाणी न बोलनी चाहिये कारण कि जब आत्मा पूर्वोक्त कारणों के वश होकर बोलता है तब उस का सत्य व्रत पलना कठिन हो जाता है। इस लिये सत्यव्रत की रक्षा के लिये भाषा समिति का पालन अवश्य ही करना चाहिये। जिस आत्मा के भाषा बोलने का विवेक होता है वह क्लेशों का नाश कर देता है जब बोलने का विवेक हो गया तो फिर—

एषणा समिति।

भोजन का विवेक भी अवश्य होना चाहिए। जैसे कि—मुनि निर्दोष भिक्षा द्वारा जीवन व्यतीत करे शास्त्रों में

भिक्षा विधि बड़े विस्तार से प्रति पादन की गई है उसी के अनुसार भिक्षा लावे किन्तु तात्पर्य यह है कि—जिस प्रकार किसी जीव को दुख न पहुंचे उसी प्रकार भिक्षा लावे शास्त्रों में लिखा है जैसे भ्रमरें फूलों में रस लेने को जाते हैं किन्तु रस ले अपने आत्मा की तृप्ति तो कर लेते हैं फूलों को पीडित नहीं करते उसी प्रकार भिक्षु उस वृत्ति से आहार लावे जिस प्रकार किसी आत्मा को दुख न पहुंचे इतना ही नहीं किन्तु फिरभी अल्प आहार करे ।

रुक्ष आहार भी परिमाण से अधिक खाया हुआ हानि कारक हो जाता है जैसे सुक्के इंधन से आग और भी प्रचंड रूप धारण कर लेती है तद्वत् शुष्क आहार भी भिक्षु के लिए सुख कारक नहीं होता तथा जैसे फोडे स्फोटक पर औषधि का प्रयोग किया जाता है केवल रोग शमन के लिए ही होता है शरीर की सुन्दरता के लिए नहीं है उसी प्रकार भिक्षु प्राणों की रक्षा के लिए वा संयम निर्वाहके लिएही आहार करे अपितु बल आदि की वृद्धि के लिए न करे यत्न पूर्वक आहार करता हुआ फिर जिस वस्तु को उठावे वा रक्खे उसमें भी यत्न होना चाहिए।

आदान निक्षेपण समिति

जैसे कि जो वस्त्र पात्र उपकरण आदि उठाना पड़े वा रखना पड़े उसमें यत्न अवश्य होना चाहिए ।

यत्न से दो लाभ की प्राप्ति होती है एक तो जीव रक्षा द्वितीय वस्तु का स्थान सुथरा रहता है ।

आलस्य के द्वारा उक्त दोनों कार्य ठीक नहीं हो सकते इस वास्ते इस समिति में ध्यान विशेष रखना चाहिए ।

यद्यपि चलनादि क्रियाओं में यत्न पहिले भी कथन किया गया है किन्तु इस समिति में वस्तु का उठाना वा रखना इत्यादि कार्यों में यत्न प्रति पादन किया गया है जब इस प्रकार यत्न किया गया तो फिर—

परिष्ठापना समिति ।

जो वस्तु गेरने में आती है जैसे मल मूत्र थूक—श्लेष्म आदि वा पानी आदि जो जो पदार्थ गेरने योग्य हों तो उस समय भी यत्न अवश्य ही होना चाहिये क्योंकि—

यदि इन क्रियाओं में यत्न न किया गया तो जीव हिंसा और घृणा उत्पादक स्थान बन जाता है अतएव ! परिष्ठापना समिति में यत्न करना आवश्यकीय है तथा जिस स्थान पर मल मूत्र आदि अशुभ पदार्थ बिना यत्न गेरे हुये होते हैं वह स्थान भी घृणा स्पर्श हो जाता है लोग भी इस प्रकार की क्रियाओं के करने वालों को घृणा की दृष्टि से देखते हैं मल मूत्र आदि पदार्थों में जीव उत्पत्ति विशेष हो जाती है इसलिये जीव हिंसा भी बहुत लगती है तथा दुर्गन्ध के विशेष बढ़ जाने से रोगों की उत्पत्ति की भी संभावना की जा सकती है अतएव ! परिष्ठापना समिति विषय विशेष सावधान रहना चाहिये।

सूत्रों में लिखा है कि—नगर के सुन्दर स्थानों में वा आरामों (बागों) में फल युक्त वृक्षों के पास आम्रादि के वनों में वा मृतक गृहों (कबरों) में पूर्वोक्त क्रियाएं न करनी चाहियें। तथा मल मूत्रादि क्रियाएं अदृष्ट में होनी चाहियें यह समिति तब पल सकती है जब मनो गुप्ति ठीक की गई हो।

मनोगुप्ति ।

मन के संकल्पों का वश करना धर्म ध्यान वा शुक्ल ध्यान में आत्मा का लगाना तब ही मनोगुप्ति पल सकती

है। जैसे कि–जिस का मन वश में नहीं है उस को चित्त की एकाग्रता कभी भी नहीं हो सक्ती चित्त की एकाग्रता विना शान्ति की प्राप्ति नहीं होती जब चित्त को शान्ति ही नहीं है तब क्रिया कलाप केवल कष्टदायक ही हो जाता है अतएव ! सिद्ध हुआ एकाग्रता के कारण से ही शान्ति की प्राप्ति मानी गई है।

कल्पना कीजिये ! एक बड़ा पुरुष है उसको लौकिक पक्ष में हर एक प्रकार की सामग्री की प्राप्ति हुई २ है जैसे धन, परिवार, प्रतिष्ठा, व्यापार, लौकिक सुख, किंतु मन उस का किसी मानसिक व्यथा से पीडित रहता है जब उससे पूछो तब वह यही उत्तर प्रदान करेगा कि–मेरे समान कोई भी दुःखी नहीं है, अब देखना इस बात का है–यदि धन, परिवारादि के मिलने से ही शान्ति होती तो वह पदार्थ उस को प्राप्त हो रहे थे। तो फिर उसे क्यों दुःख मानना पड़ा, इस का उत्तर यह है कि–चित्त की शान्ति प्रवृत्ति में नहीं है, निवृत्ति में ही चित्त की शान्ति हो सकती है इस लिये जब चित्त की शान्ति होगी तब ही संयम का जीव आराधक हो सकता है, यद्यपि संयम

शब्द की हर एक प्रकार से व्याख्या की गई है परन्तु सम्उपसर्ग–और "यम्" धातु "अच्" प्रत्यय से ही संयम शब्द बनता है सो जिस का अर्थ यही है। ज्ञान पूर्वक निवृत्ति का होना जब सम्यग् ज्ञान से तृष्णा का निरोध किया जायेगा तब ही आत्मा अपने संयम का आराधक बन सकता है तथा मनोगुप्ति द्वारा हर एक प्रकार की शक्तियें भी उत्पन्न कर सकता है। मेस्मेरेज़म विद्या एक मन की शक्ति का ही फल है सो जब मनोगुप्ति होगी तब वचन गुप्ति का होना स्वाभाविक बात है।

वचन गुप्ति।

वचन वश करने से सब प्रकार के क्लेष मिट जाते हैं प्रायः क्लेषों की उत्पत्ति वचन के ही कारण से हो जाती है क्योंकि–जब विना विचार किए वचन बोला जाता है वह वचन दूसरे के अनुकूल न होने से क्लेष जन्य बन जाता है शास्त्रों में लिखा गया है कि–शस्त्रों के प्रहार लगे हुए विस्मृत हो जाते हैं किन्तु वचन रूपी शस्त्र का प्रहार लगा हुआ विस्मृत होना कठिन होता है शस्त्रों के आते समय उनके टालने के लिये अनेक प्रकार

के उपाय किये जा सकते हैं उन उपायों से कदाचित् शस्त्र के प्रहारों से बचाव हो भी सकता है, किन्तु वचन रूपी शस्त्र बिना रोक टोक से कानों में प्रविष्ट हो जाता है, फिर श्रवण में गया हुआ वह प्रहार मन पर विजय पाता है जिस के कारण से मन औदासीन दशा को प्राप्त हो जाता है। अतएव! सिद्ध हुआ कि वचन के समान कोई भी और शस्त्र नहीं है। इस लिये वचन गुप्ति का धारण करना आवश्यकीय है जब वचन गुप्ति ठीक की जायेगी तब वचन के विकार से जीव रहित होता हुआ अध्यात्म वृत्ति में प्रविष्ठ हो जाता है। अर्थात् आध्यात्मिक दशा में चला जाता है जिस के कारण से वह अपने आप को वा अनेक शक्तियों को देखने लगता है। यदि उस के मुख से अकस्मात् वचन भी निकल जावे तो वह वचन उसका मिथ्या नहीं होता" वर और शाप की शक्ति उस को हो जाती है इस लिये वचन गुप्ति का होना बहुत ही आवश्यकीय है" तथा जो बहु भाषी होते हैं उनकी सत्यता पर लोगों का विश्वास स्वल्प हो जाता है। साथ ही वह अनेक प्रकार के कष्टों के मुंह को देखता है सो जब वचन गुप्ति होगई तब काय गुप्ति का होना भी सुगम बात है।

काय गुप्ति

कायगुप्ति के विना धारण किए लौकिक पक्ष में भी जीव यश प्राप्त नहीं करसकते देखिये ! जिनके काय वशमें नहीं है वेही चोरी और व्यभिचार में प्रवृत्त होते हैं जिनका फल प्रत्यक्ष लोगों के दृष्टिगोचर होरहा है यदि उनके काय वश में होता तो फिर क्यों वेह नाना प्रकार के कष्ट भोगते। मित्रो ! काय के विना वश किये ज्ञान और ध्यान दोनों ही नहीं प्राप्त होसकते। क्योंकि— विना दृढ़ आसन धारे उक्त दोनों ही कार्य सिद्ध नहीं होसक्ते।

यद्यपि—मन के भावों से आत्मा नाना प्रकार के कर्मों को बांधते हैं परन्तु लौकिक—पक्ष में काय का पाप वर्त्तमान् बतलाया गया है क्योंकि—यश और अपयश काय के द्वारा ही जीव प्राप्त करते हैं अतएव काय का वश करना परमावश्यकीय है। सो जब काय वश में होगया तब पूर्णतया संवर भाव जब होता फिर पूर्ण संवर का फल यह होजाता है कि—वह आत्मा पुण्य और पापरूपि आश्रव से रहित होता है

जो आत्मा आश्रव से छूटगया और उसके पुण्य पाप क्षय होगए तो वही समय उस आत्मा के मोक्ष का माना जाता है यदि किंचित् मात्र पुण्य पाप की प्रकृतियें रहगई हों तब वेह जीवन मुक्त की दशा को प्राप्त हो जाता है अतएव ! सिद्ध हुआ काय का वश करना आवश्यकीय है।

यद्यपि साधु वृत्ति के सहस्रों गुण वर्णन किए हुए हैं किन्तु मुख्य गुण यही है जो पूर्व कहे जा चुके हैं इन्हीं गुणों में अन्य गुण भी आ जाते हैं इसलिए साधु वृत्ति के द्वारा जीवन व्यतीत करना पवित्र आत्माओं का मुख्य कर्तव्य है और शान्ति की प्राप्ति इसी जीवन के हाथ में है और किसी स्थान पर शान्ति नहीं मिल सकती—क्यों कि—क्षमा, दमिन इन्द्रिय—और निरारंभ रूप यही पूर्वोक्त वृत्ति कथन की गई है॥

सातवाँ पाठ

(नियम करने के योग्य विषय)

प्रिय सुज्ञ पुरुषो! इस असार संसार में केवल धर्म ही एक सार पदार्थ है जिसके करने से प्राणी हर एक

प्रकार के सुख पा सकता है जैसे एक बड़ा विशाल प्रफुल्लित हुआ बाग़ देखने में आता है और उसको देख कर प्रत्येक आत्मा का चित आनंदित हो जाता है जब उस बाग़ की लक्ष्मी पर विचार किया जाता है तब यह निश्चय हुए बिना नही रहता कि—इस बाग़ को जल अच्छा मिल चुका है उसी के कारण से इसकी लक्ष्मी अतीव बढ़ गई है। इसी हेतु से जाना जाता है कि—जिस आत्मा के मन के मनोरथ पूरे हो जाते हैं और वह सर्व स्थानों पर प्रतिष्ठा भी पाता है उसका मूल कारण एक धर्म ही है। जैसे भावों से उसने धर्म किया था वैसे ही फल उस आत्मा को लग गये। इस लिए। धर्म का करना अत्यावश्यकीय है।

अब प्रश्न यह खड़ा होता है कि—कौनसा धर्म ग्रहण किया जाए। तब इसका उत्तर यह है कि—शास्त्रों ने तीन अंग धर्म के कथन किए हैं जैसे कि तप, क्षमा, और दया, सो तप इच्छा निरोध का नाम है वा कष्टों का सहन करने को भी तप ही कहते हैं जब कष्टों का समय आ जाए तब उन कष्टों को शान्ति पूर्वक

सहन करना यही क्षमा धर्म है तथा जिन आत्माओं ने कष्ट दिया है उन्हीं पर मन से भी द्वेष न करना यह "दया" धर्म है परन्तु क्षमा और दया का भी मूल कारण तप ही है अतएव ! सिद्ध हुआ तप कर्म अवश्य ही करना चाहिए।

संसार भर में हर एक पदार्थ की प्राप्ति हो सकती है जैसे कि—धन, परिवार, लाभ, मन इच्छित सुख परन्तु तप करने का समय प्राप्त होना अति कठिन है क्योंकि—तप कर्म उस दशा में हो सकता है जब शरीर पूर्ण निरोग दशा में हो और पांचों इन्द्रियें अपना २ काम ठीक करती हों फिर तप कर्म करते हुए इस विचार की भी आवश्यकता होती है कि—जिस प्रकार तप (प्रत्याख्यान) ग्रहण किया गया हो उसको उसी प्रकार से पालन किया जाए। इस विषय में प्रत्याख्यान करते समय ४९ भांगे कथन किए गए हैं—भांगे शब्द का यह अर्थ है कि एक प्रकार से प्रत्याख्यान किया हुआ है दूसरे प्रकार से प्रत्याख्यान नहीं है। जैसे कल्पना करो किसी ने प्रत्याख्यान किया कि—मान मैं मन से कंदमूल नहीं खाऊंगा

तब वह अपने हाथों से वनस्पति का स्पर्श करता है और वचन से औरों को उपदेश देता है कि—तुम अमुक फल खा लो परन्तु स्वयं उसका मन खाने का नहीं है इसी प्रकार यदि वचन से प्रत्याख्यान किया हुआ है तब उसका मन और काय से प्रत्याख्यान नहीं है तथा आप अमुक कार्य नहीं करूंगा तब उसके औरों से कार्य कराने या औरों के किए हुए कार्यों की अनुमोदना करना इन बातों का त्याग नहीं है इस से सिद्ध हुआ कि—जिस प्रकार से प्रत्याख्यान कर लिया है फिर उसको उसी प्रकार पालन करना चाहिए।

यदि करते समय स्वयं ज्ञान नहीं है तो गुरू को उचित है कि—प्रत्याख्यान करने वाले को प्रत्याख्यान के भेदों को समझा देवे जब इस प्रकार से कार्य किया जाएगा तब कर्म में दोष नहीं लगेगा बस इसी क्रम को आगे कहते हैं।

भांगों का ज्ञान हर एक व्यक्ति को होना चाहिए जिस से वह सुख पूर्वक तप ग्रहण करने में समर्थ हो जाए।

और यह भांगे अंक और करण तथा योगों के आधार पर कथन किए गए हैं जिसमें करण तीन होते हैं जैसे कि—करना, कराना, अनु मोदना इन्हीं को करण कहते हैं मन, वचन, और काय को योग कहते हैं।

सुगम बोध के लिए एक इन के विषय का यंत्र दिया जाता है। यथा—

अंक	११	१२	१३	२१	२२	२३	३१	३२	३३
भांगा	६	६	३	६	६	३	३	३	१
करण	१	१	१	२	२	२	३	३	३
योग	१	२	३	१	२	३	१	२	३

भांगा—६ वां १८ वां २१ वां ३० वां ३६ वां ४२ वां ४४ वां ४८ वां ४६ वां यही इन भांगे को जानने का यन्त्र है अब इनके उच्चारण करने की शैली लिखी जाती है जैसे कि—

अंक ११ का १ करण १ योग से कहना चाहिये—यथा—करूं नहीं मनसा १ करूं नहीं वयसा (वचसा)

२ करूं नहीं कायसा (कायेन) ३ कराऊं नहीं मनसा
४ कराऊं नहीं वयसा (वचसा) ५ कराऊं नहीं कायसा
(कायेन) ६ अनुमोदं नहीं मनसा ७ अनुमोदं नहीं
वयसा (वचसा) ८ अनुमोदं नहीं कायसा (कायेन)
९॥ इस प्रकार एकादश अंक के नव भांगे बनते हैं
किन्तु इनको इसी प्रकार कण्ठ करने की शैली चली
आती है इस लिए (वयसा) "कायसा" यह दोनों
शब्द प्राकृत भाषा के ज्यों के त्यों ही रक्खे गये हैं
किन्तु पाठकों को चाहिये कि बालकों को इनके अर्थ
समझा दें कि-"वयसा" वचन से "कायसा" काय से
प्रत्याख्यान आदि करता हूं आगे भी सर्व भांगों के
विषय इसी प्रकार जानना चाहिये।

२ अंक १२ वां=भांगे नव एक करण दो योग से
कहने चाहिये। जैसे कि—करूं नहीं मनसा वयसा
करूं नहीं मनसा कायसा करूं नहीं वयसा कायसा
कराऊं नहीं मनसा वयसा कराऊं नहीं मनसा
कायसा कराऊं नहीं वयसा कायसा अनुमोदं
नीं मनसा वयसा अनुमोदं नहीं मनसा कायसा
९ अनुमोदं नहीं वयसा कायसा।

३—अंक एक १३-का भांगे ३ एक १ करण ३
योग से कहने चाहिए—जैसे कि—करूं नहीं मनसा

वयसा कायसा १ कराऊं नहीं मनसा वयसा कायसा २ अनुमोदं नहीं मनसा वयसा कायसा ३ ॥

४—अंक-एक-२१ का भांगे ९ । दो करण एक योग से कहने चाहिए—जैसे कि—करूं नहीं कराऊं नहीं मनसा १ करूं नहीं कराऊं नहीं वयसा २ करूं नहीं कराऊं नहीं कायसा ३ करूं नहीं अनुमोदं नहीं मनसा ४ करूं नहीं अनुमोदं नहीं वयसा ५ करूं नहीं अनुमोदं नहीं कायसा ६ कराऊं नहीं अनुमोदं नहीं मनसा ७ कराऊं नहीं अनुमोदं नहीं वयसा ८ कराऊं नहीं अनुमोदं नहीं कायसा ९ ॥

५—अंक एक २२ का भांगे ९ । दो करण दो योग से कहने चाहिए । करूं नहीं कराऊं नहीं मनसा वयसा १ करूं नहीं कराऊं नहीं मनसा कायसा २ करूं नहीं कराऊं नहीं वयसा कायसा ३ करूं नहीं अनुमोदं नहीं मनसा वयसा ४ करूं नहीं अनुमोदं नहीं मनसा कायसा ५ करूं नहीं अनुमोदं नहीं वयसा कायसा ६ कराऊं नहीं अनुमोदं नहीं मनसा वयसा ७ कराऊं नहीं अनुमोदं नहीं मनसा कायसा ८ कराऊं नहीं अनुमोदं नहीं वयसा कायसा ९ ॥

६—अंक एक २३ दो करण २ योग से कहने चाहिये। जैसे कि—करूं नहीं कराऊं नहीं मनसा वयसा कायसा १ करूं नहीं अनुमोदं नहीं मनसा वयसा कायसा २ कराऊं नहीं अनुमोदं नहीं मनसा वयसा कायसा ३॥

७—अंक एक ३१ का भांगे ३। तीन करण एक योग से कहने चाहिये। करूं नहीं कराऊं नहीं अनुमोदं नहीं मनसा १ करूं नहीं कराऊं नहीं अनुमोदं नहीं वयसा २ करूं नहीं कराऊं नहीं अनुमोदं नहीं कायसा ३॥

८—अंक एक ३२ का भांगे ३। तीन करण दो योग से कहना चाहिये। करूं नहीं कराऊं नहीं अनुमोदं नहीं मनसा वयसा १ करूं नहीं कराऊं नहीं अनुमोदं नहीं मनसा कायसा २ करूं नहीं कराऊं नहीं अनुमोदं नहीं वयसा कायसा ३।

९—अङ्क ३३ का भांगा १ तीन करण तीन योग से कहना चाहिये। जैसे कि—करूं नहीं कराऊं नहीं अनुमोदं नहीं मनसा वयसा कायसा १॥

इस प्रकार ४६ भांगों का विवरन किया गया है। हर एक नियम करने वाले को इनका ध्यान रखना चाहिये। जैसे कि—सब भांगों के अनुसार नियम किया जायगा। तब नियम का चलना बहुत ही सुगम होगा और उसके पालने का ज्ञान भी ठीक रहेगा जब प्रत्याख्यान की विधि को जानता ही नहीं तब उसके शुद्ध पालने की क्या आशा की जासकती है अतएव। इनको कण्ठस्थ अवश्य ही करना चाहिये।

इनका पूर्ण बिवरण देखना होवे तो मेरे लिखे हुए पच्चीस बोल के थोकड़े के २४ वें बोल में देखना चाहिये।

तथा श्री भगवती सूत्र में इनका विस्तार पूर्वक कथन किया गया है जब कोई आत्मा प्रत्याख्यान करता है तब उसको देश वा सर्व चारित्री कहा जाता है सो चारित्र ५ प्रकार से प्रतिपादन किये गए हैं जैसे कि—सामायिक चारित्र १ छेदोपस्थापनीय चारित्र २ परिहार-विशुद्धि चारित्र ३ सूक्ष्म संपराय चारित्र ४ यथाख्यात चारित्र ५ सामायिक चारित्र सावद्य कर्म का निवृति रूप होता है १ पूर्व दीक्षा का छेद रूप छेदोपस्थापनीय चारित्र

होता है २ दोषों के दूर करने के वास्ते परिहार विशुद्धि (तप) चारित्र कहा गया है ३ सूक्ष्म कषायरूप सूक्ष्म संपराय चारित्र कथन किया गया है ४ जिस प्रकार कहता है उसी प्रकार करता है उसे ही यथाख्यात चारित्र कहते हैं ५ इन चारित्रों का पूर्ण वृत्तान्त विवाह प्रिज्ञप्ति आदि सूत्रों से जान लेना चाहिये ।

वास्तव में चारित्र का अर्थ आचरण करना ही है सो जब तक जीव शुद्धाचरण नहीं करता तब तक सुमार्ग में नहीं आसकता सदाचार शब्द भी इसी पर्याय का वाची है ।

किन्तु चारित्र दो प्रकार से प्रतिपादन किया गया है जैसे कि–द्रव्य चारित्र और भाव चारित्र–द्रव्य चारित्र से पुण्य का बंध पौद्गलिक सुख उपलब्ध होजाते हैं भाव चारित्र से मोक्ष की प्राप्ति होजाती है अपितु पांचों चारित्रों का आदि मूल सामायिक चारित्र ही है क्योंकि जब सावद्य (पाप मय) योगों का ही त्याग किया गया है तब उत्तरोत्तर गुणों की प्राप्तिरूप अन्य चारित्रों का वर्णन किया जाता है इस लिए १ सामायिक चारित्र में

पुरुषार्थ अवश्य ही करना चाहिये और इस चारित्र के दो भेद किए गये हैं जैसे देश चारित्र वा सर्व चारित्र सो देश चारित्र गृहस्थ सुख पूर्वक ग्रहण कर सकते हैं सर्व चारित्र मुनि जन धारण करते हैं सो गृहस्थों को देश चारित्र में विशेष परिश्रम करना चाहिये जिस से वह सुगति के अधिकारी बनें।

पाठ आठवां।

(संयतराजर्षि का परिचय)

पूर्व समय में काम्पिल्लपुर नामक एक नगर था जो नागरिक गुणों से मण्डित था, सुन्दरता में इतना प्रसिद्ध था, कि–दूरदेशान्तरों से दर्शक जन देखने की तीव्र इच्छा से वहां पर आते थे, और नगर की मनो-हरता को देखकर अपने २ आगमन के परिश्रम को सफल मानते थे, उस नगर के बाहिर एक उद्यान था, जिसका नाम "केशरी वन" ऐसा प्रसिद्ध था, नाना प्रकार के सुन्दर वृक्षों का आलय था, विविध प्रकार लतायें जिसकी प्रभा को उत्तेजित कररही थीं, जिनमें

षट्ऋतुओं के पुष्प विद्यमान रहते थे, अनेक प्रकार के पक्षीगण अपने २ मनोरुचक राग अलाप रहे थे, मृगों की पंक्तियें भोलीभाली मुखाकृति को लिए इतस्ततः धावन कररहीं थीं, जिनके प्रिय लोचन चलते हुए पथिकों के हृदयों को अयस्कान्त के समान आकर्षण करलेते थे, कहांतक, उस वन की उपमा लिखें ? यावत् जो पुरुष उसको एकबार देखलेता था, वह अपने जन्म को उसदिन से ही सफल समझता था।

सो पूर्वोक्त नगर में अति प्रभावशाली, पुण्य पुंज, परम विख्यात "संयत" नामक राजा राज्य अनुशासन करता था, जिसको पूर्व भाग्योदय से धन, धान्य, सेना, वाहन, अश्व, गजादि राज्य के योग्य सर्व सामग्री पूर्णतया प्राप्त थी, एकदा वह राजा चतुः प्रकार की सेना को साथ लेकर आखेटक निमित्त अर्थात् शिकार खेलने के लिए केशरी वन में गया, वहां एक परम सुन्दर श्याम वर्णीय मृग दृष्टिगोचर हुआ, और उसका राजा से गुप्त होने की चेष्टा करके भागगया, किन्तु भागता हुआ अपनी मनोहरता और आकर्षण शक्ति का

राजाजी के मुख में शीघ्र पानी भर आया, और चाहा कि–इस मृग का वध करूं, रसों के लोलुपी राजा ने सेना को वहां ही खड़े रहने की आज्ञा दी, केवल दो दासों को ही साथ लेकर उसके पीछे अपने पवन जीत अश्व को दौड़ाना प्रारंभ किया, और बड़े बल से एक ऐसा धनुष मारा, जो मृग के हृदय को विदीर्ण करता हुआ उसको दूसरी ओर जा निकला तब मृग, घाव से दुःखित होकर मृत्यु के भय से भाग कर एक अफोव (लताओं के) मंडप में जा गिरा, राजा अपने निशाने पर विश्वास करके अर्थात् मेरे धनुष प्रहार से मृग अवश्यमेव ही घायल होगया होगा, अतः वह कदापि जीवित नहीं रहसकेगा, ऐसा विचार करके उसके पीछे २ भागता हुआ वहां पर ही आगया, और उस घावयुक्त हरिण को देख अपने परिश्रम की सफलता का विचारही कररहा था, कि, अकस्मात् उसकी दृष्टि एक जैन साधु पर पड़ी, जोकि–धर्म और शुक्ल ध्यान को ध्या रहे थे, स्वाध्याय में प्रवृत्त थे, तथा वे तपोधन क्षमा (शान्ति) निरहंकारता, निर्लोभता तथा पांच महाव्रत (अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह,) करके विभूषित थे

और उस अफोव मंडप में अर्थात् नागवल्ली द्राक्षा, लता वृक्षादि करके आकीर्ण स्थान में इकेले ही ध्यान कररहे थे, तदनन्तर, राजा मुनि को देखकर भयभीत होगया, और विचार करने लगा कि-मुझमंदभागी ने मांस के स्वाद के वास्ते इस मुनि के मृग को मारदिया, सो यह महत् अकार्य हुआ, यदि यह मुनि क्रोधित होगए तो फिर मेरे दुःख की सीमा न रहेगी, ऐसा सोच कर अश्व को विसर्जन करके (त्याग करके) मुनि महाराज के समीप आया, और सविनय वंदना नमस्कार (प्रणाम) की, मुख से ऐसे बोला कि—हे भगवन्! मेरे अपराध को क्षमा करो, मुनि मौन वृत्ति में ध्यान कररहे थे, इस कारण उन्होंने राजा को कुछ भी उत्तर न दिया, अतः अपने ध्यान में बैठे रहे, मुनि के न बोलने से राजा भयभीत होगया, तथा भयभ्रान्त होकर इस प्रकार भाषण करने लगा कि—हे भगवन्! मैं कांम्पिल्यपुर का संयत नामक राजा हूं, इसलिए! आप मेरे से वार्त्तालाप करें, हे स्वामिन्! आप जैसा साधु क्रुद्ध होने पर अपने तप के बल से सहस्रों, लक्षों, करोड़ों, पुरुषों का दाह करने में समर्थ है, अतः आपको क्रुद्ध न होना चाहिए।

राजा के इस प्रकार वचनों को श्रवण करके मुनि ने विचार किया कि—मेरा यह धर्म है कि—किसी प्राणी को भी भय न उपजाऊं तथा जो मेरे से भय करें, उनका भय दूर करूं, इसी प्रकार शास्त्रों का उल्लेख है, (निर्भय करना परम धर्म है) ऐसा विचार कर मुनि बोले,—हे राजन् ! भय मतकर ! मैं तुझे अभय दान देता हूं, तूभी जीवों को अभय दान प्रदान कर, किसी प्राणी को दुःखित करना मनुष्य का कर्तव्य नहीं है।

हे पार्थिव ! इस क्षणभंगुर, अनित्य, संसार में स्वल्प जीवन के वास्ते क्यों प्राणी वध करता है।

हे नृप ! एकदिन सर्वराष्ट्र अन्तःपुरादिक, भाण्डागारादिक त्यागने पड़ेंगे, और परवश होकर परलोक को जाना पड़ेगा, फिर ऐसे अनित्य संसार को देखकर भी क्यों राज्य में मूर्छित होकर जीवों को पीड़ित करने से स्वआत्मा को पापों से बोझल कररहा है।

हे महीपते ! जिस जीवित तथा रूप में तू इतना मुग्ध हो रहा है, और परलोक के भय से निर्भय होरहा है, वह आयु तथा शरीर की सौन्दर्य विद्युत् के समान

चंचल है, यौवन नदी के वेग की उपमा वाला है "जीवन तृणाग्नि के समान स्वल्पकाल का है" भोग शरतृऋतु के मेघों की छाया सदृश हैं, मित्र, पुत्र, कलत्र, भृत्यवर्ग, सम्बन्धी जनादि सर्व स्वप्न तुल्य हैं।

हे भूपते! दारा, पुत्र, वान्धव, भ्रातादि प्रमुख सब अपने २ स्वार्थ के साथी हैं "और जीवित रहने तक ही जीते हैं" मृत्यु के समय कोई भी साथ नहीं जाता, उस पुरुष के पीछे उसी के धन से अपने सम्बन्धियों का पालन पोषण करते हैं, आनन्द से शेष आयु को व्यतीत करते हैं, और उस मृतक पुरुष का स्मरण भी नहीं करते,—इसलिए।

हे राजन्! कृतघ्न दारा, राज्यादि में व्यर्थ मुग्धता न करनी चाहिए. देखिये संसार की कैसी सोचनीय दशा है. कि—अत्यन्त शोकार्दित पुत्र अपने मृतक पिता को घर से बाहर करते हैं, उसी प्रकार पिता भी महा दुःखी होता हुआ मृतक पुत्र को स्मशान भूमिका में लेजाकर स्वकर से उसका दाह करता है, बान्धव, बन्धु का, मृत्य संस्कार करता है।

हे राजन् ! ऐसे विचार कर तप को ग्रहण, धर्म का आचरण, करना आवश्यक है।

हे पृथिवीपते ! जिस जीवने जैसे शुभ अथवा अशुभ कर्म तथा सुख दुःख उपार्जित न किए होते हैं, उन्हीं के प्रभाव से पर लोक को चला जाता है, और वेह कर्म ही उसके साथ जाते हैं, अन्य कोई भी जीव का साथी नहीं बनता।

हे महीपते ! इस प्रकार की व्यवस्था को देख कर भी क्यों वैराग्य को प्राप्त नहीं होता, अर्थात् इन सांसारिक विनाशी, क्षणिक, अध्रुव सुखों के ममत्त्व भाव को त्याग कर कैवल्य रूपी नित्य ध्रुव सुखों की प्राप्ति का प्रयत्न कर।

इस प्रकार मुनि के परम वैराग्य उत्पादक, स्वल्पाक्षर, बहुल अर्थ सूचक, शराव (प्याले) में सागर को भरने की कहावत को चरितार्थ करने वाला, सत्योपदेश श्रवण करके, वह संयत राजा अत्यन्त संवेग को प्राप्त हुए, और गर्द भालि नामक अनगार के समीप वीतराग धर्म में दीक्षा के लिए उपस्थित होगए, राज्य को त्याग

दिया, तथा मुनि के पास दीक्षित होकर उन्हीं के शिष्य होगए। अपितु साध्वाचारादि तथा तत्त्व ज्ञान को गुरु के पास से अध्ययन प्रारंभ किया।

बुद्धि की प्रगल्भता से स्वल्पकाल में ही तत्त्वज्ञान जैसे कठिन विषय के पारगामी होगए। एकदा गुरु की आज्ञा शिरोधारण करके आप अकेले ही विहार करगए, मार्ग में आपको एक क्षत्रिय मुनि मिले जोकि,—महान् विद्वान् थे उनसे चिरकाल तक वार्तालाप हुआ, तथा उन्होंने आपको प्राचीन राजों, महाराजों, चक्रवर्तियों के इतिहास अतीव विस्तार पूर्वक सुनाए, और संयम मार्ग में पूर्व से भी अधिक दृढ़ किया, जिसका विस्तीर्ण विवरण जैन सूत्र श्रीमदुत्तराध्ययन के अष्टादशवें अध्याय में पूर्णतया विद्यमान है. जिस महाशय को अधिक वृत्तान्त देखने की अभिलाषा हो, वह पूर्वोक्त सूत्र के उक्त अध्याय को स्वाध्याय करें, यहां केवल परिचय मात्र ही लिखा गया है। तथा यही इस चित्र का परिचय है।

नोट—संयत राजर्षि के चरित्र परिचय नामक लेख स्वर्गीय जैनमुनि पं० ज्ञानचन्द्र जी महाराज का लिखा हुआ था जो कि उनकी संचिका में ज्यूं का त्यूं पड़ा था और यह चित्र हस्त लिखित एक प्राचीन भंडारे से उपलब्ध हुआ था।

नवाँ पाठ ।

(जैन सिद्धान्त विषय)

प्रश्न	उत्तर
संसार अनादि है या आदि है ।	अनादि भी है आदि भी है ।
भला यह दोनों बातें कैसे होसक्ती हैं, या तो अनादी कहना चाहिये या आदि ।	प्रियवर ! संसार दोनों स्वरूपों का धारण करने वाला है अतएव ! संसार अनादि भी है और आदि भी है ।
अनादी किस प्रकार से है ।	प्रवाह से ।
प्रवाह किसे कहते हैं ।	जो क्रम से कार्य चला आता हो ।
इसमें कोई दृष्टान्त दो ।	जैसे पिता—और पुत्र का अनादि सम्बन्ध चला आ-ता है तथा जैसे कुक्कड़ी से अण्डा, और अण्डा से कुक्कड़ी—इसी क्रम को प्रवाह कहते हैं ।

प्रश्न	उत्तर
पहिले कुक्कड़ी क्यों न मानली जाए।	क्या-बिना अण्डा से कुक्कड़ी होसक्ती है।
यदि बिना अण्डा से कुक्कड़ी नहीं होसक्ती तो फिर पहिले अण्डा ही मानलेना चाहिए।	मित्रवर! क्या कुक्कड़ी के बिना अण्डा उत्पन्न कभी होसक्ता है।
जिस समय परमात्मा सृष्टि की रचना करता है उस समय अपनी शक्ति द्वारा बिना माता, पिता के पुत्र उत्पन्न होजाते हैं।	मित्रवर्य! कारण के बिना कार्य की उत्पत्ती कभी भी नहीं होसक्ती-जैसे मिट्टी के बिना घट नहीं बन सकता, उसी प्रकार जब परमात्मा ने मनुष्य बनाए, तब पहिले किस कारण से बनाए, और तुम कौनसा कारण मानते हो।
क्या कारण भी कई प्रकार के होते हैं।	हां-कारण दो प्रकार के होते हैं-जैसे उपादान कारण, और निमित्त कारण।
उपादान कारण का क्या अर्थ है।	अपनी शक्ति से कार्य करना।

प्रश्न	उत्तर
निमित्त कारण किसे कहते हैं।	जैसे—कुंभकार घट के बनाने में निमित्त मात्र होता है किन्तु मिट्टी आदि द्रव्य पहिले ही विद्यमान होते हैं।
हम तो सृष्टि कर्ता परमात्मा को उपादान कारण से मानते हैं।	उपादान कारण निमित्त कारण बिना सफलता प्राप्त नहीं करसकता, जैसे कुंभकार—घट बनाने का वेत्ता तो है किन्तु मिट्टी आदि द्रव्य उसके पास नहीं है तो भला ! वह किस प्रकार घट बना सकता है।
परमात्मा अपनी शक्ति द्वारा सब कुछ करसकता है।	क्या—ईश्वर के इच्छा भी है।
ईश्वर इच्छा से रहित है इसलिए ! उसको इच्छा नहीं होती।	जब ! ईश्वर इच्छा से रहित है तो फिर बिना इच्छा शक्ति का स्फुरणा कैसे संभव होसकता है।
वह सर्वशक्तिमान् है। जो चाहे सो करसकता है।	क्या—ईश्वर अपने स्थान में दूसरे ईश्वर को बना सकता है। और अपना नाश कर सकता है।

प्रश्न	उत्तर
यह दोनों असम्भव कार्य हैं इन्हें ईश्वर क्यों करे ।	प्रियवर ! जब सर्वशक्तिमान् मानते हो फिर यह असंभव क्यों होसकते हैं ।
असम्भव कार्य ईश्वर नहीं करता ।	क्या—विना माता पिता के सृष्टि की रचना करना यह असंभव कार्य नहीं है ।
माता पिता के विना सृष्टि का उत्पन्न करदेना कोई असम्भव बात नहीं है क्यों-कि—बहुतसी सृष्टि विना माता के ही उत्पन्न होती दिख पड़ती है जैसे—मैंडक सृष्टि विना माता पिता के होजाती है ।	सखे ! मेंडक सृष्टि ! वर्षा के निमित्त से उत्पन्न होती है—क्योंकि—जिस पृथिवी में मेंडक उत्पन्न होने के परमाणु होते हैं उसी में वर्षा के कारण से पूर्व कर्मों के कारण से मेंडक यानि वाले जीव उत्पन्न होजावे हैं—क्योंकि—यदि ऐसे न माना जायगा तब ! वर्षा के समय किसीने थाली आदि वर्त्तन (भाजन) रखदिए फिर वेह जल से भरगए किन्तु मेंडकों की उत्पत्ति उस जल में नहीं देखीजाती अतः

प्रश्न	उत्तर
	सिद्ध हुआ—वर्षा केवल निमित्त मात्र होती है वास्तव में उन जीवों की योनि वही है ।
जैसे वनस्पति सम्मूर्छिम उत्पन्न होजाती है उसी प्रकार सृष्टि के विषय में भी जानना चाहिए ।	मित्रवर ! वनस्पति आदि जीवों की जैसे योनि होती है वेह उसी प्रकार उस योनि में पानी आदि निमित्तों के द्वारा उत्पन्न होजाते हैं किन्तु बिना माता पिता के पुत्र उत्पन्न कभी भी नहीं होसकता ।
मनुष्यों की सृष्टि के विषय में जैन शास्त्र क्या बतलाते हैं ।	जैन सूत्रों में लिखा है कि अनादिकाल से यह नियम चला आता है—स्त्री पुरुष के परस्पर संयोग (मैथुन) से गर्भजन्य मनुष्य सृष्टि उत्पन्न होती चली आरही है और आगे को भी यही नियम चला जायगा ।

प्रश्न

सखे ! आदि सृष्टि मैथुनी नहीं होती तदनु मैथुनी सृष्टि होजाती है।

उत्तर

वयस्य ! जब ! अमैथुनी सृष्टि उत्पन्न होही नहीं सकती तो भला सृष्टि हुई कहां से जो आपने तदनु सृष्टि मैथुनी होती है ऐसे मानलिया है, तो भला पहिली सृष्टि में परमात्मा ने क्या दोष देखा जिससे उसको प्रथम नियम बदलना पड़ा।

प्रश्न

तो फिर हमको क्या मानना चाहिए !

उत्तर

हमको प्रवाह से संसार अनादि मानना चाहिए।

प्रश्न

तो भला अनादि संसार किस प्रकार माना जासकता है।

उत्तर

पर्याय से !

प्रश्न

पर्याय किसे कहते हैं।

उत्तर

पदार्थों की दशा परिवर्त्तन हो जाना जैसे शुभ पदार्थ से अशुभ होजाते हैं और अशुभ पदार्थों से शुभ बन जाते हैं नूतन से पुरातन, और प्राचीन से फिर नूतन—जैसे अन्नादि पदार्थ भक्षण करने

प्रश्न	उत्तर
	के पश्चात् मल मूत्र की पर्याय को प्राप्त होजाते हैं फिर वही मल मूत्र खेत आदि स्थानों में पड़ कर फिर अन्नादि पर्याय को प्राप्त होजाते हैं ।
मनुष्यों का पर्याय किस प्रकार परिवर्त्तन होता है ।	मनुष्यों का पर्याय समयर परिवर्त्तन होता रहता है, और स्थूल पर्याय—यह है जैसे-बाल, युवा, और वृद्ध ।
मनुष्य आदि क्या अनादि हैं ।	मनुष्य आदि भी है और अनादि भी है ।
किस प्रकार अनादि और आदि है ।	जीव अनादि है मनुष्य की पर्याय आदि है जैसे जब मनुष्य उत्पन्न हुआ उस समय उसकी आदि हुई और जब मृत्यु होगया तब मनुष्य की पर्याय का अंत होगया ।
क्या हर एक जीव इसी प्रकार से माने जाते हैं ।	हां—हर एक—जीव इसी प्रकार माने जाते हैं जैसे—देव योनि के जीव आदि भी हैं और अनादि भी ह—आदि तो वेह इस लिए हैं कि—देव

उत्तर

योनि में उत्पन्न होने के कारण से क्योंकि—जिसकी उत्पत्ति है उसकी आदि है और जब आदि सिद्ध हुई तब वेह अन्त वाले भी सिद्ध होगए। अतएव ! वेह सादि सान्त है किन्तु जीव द्रव्य की अपेक्षा से वेह अनादि अनंत हैं इस प्रकार हर एक के विषय में जानना चाहिये।

अनादि अनन्त कौन २ से द्रव्य हैं।

धर्म—अधर्म, आकाश, काल जीव और पुद्गल, यह छै द्रव्य अनादि अनन्त हैं।

अनादि सान्त क्या है „

भव्य जीवों के कर्म अनादि सान्त हैं अर्थात् जो जीव मोक्ष जाने वाले हैं उनके साथ जो कर्मों का सम्बन्ध है वह अनादि सान्त हैं क्योंकि—कर्मों को क्षय करके मोक्ष जाएंगे।

प्रश्न	उत्तर
सादि अनन्त पदार्थ कौन सा है।	जिस समय। जो जीव मोक्ष में जाता है उस समय उसकी आदि होती है परन्तु वह अपुनरावृत्ति वाला होता है इस लिये उसे सादि अनन्त कहा जाता है।
सादि सान्त पदार्थ कौन २ से हैं।	चारों जातियों के जीवों का पर्याय सादि सान्त है तथा पुद्गल द्रव्य का पर्याय सादि सान्त है।
चारों जातियों के जीवों की पर्याय सादि सान्त कैसे है।	नारकीय १ देव २ मनुष्य ३ और तिर्यक् ४ इन जीवों के उत्पन्न और मृत्यु धर्म के देखने से यही निश्चय होता है कि—इनका पर्याय सादि सान्त है और जीव की अपेक्षा अनादि अनन्त है।
पुद्गल द्रव्य किसे कहते हैं।	जिसके मिलने और बिछुड़ने का स्वभाव है यावन्मात्र पदार्थ हैं वे सर्व पुद्गल द्रव्य हैं और यह रूप है।

प्रश्न	उत्तर
प्रमाण किसे कहते हैं।	जो सर्व अंश ग्राही हो अर्थात् सर्व प्रकार से पदार्थों का वर्णन करे।
प्रमाण कितने हैं।	दो।
उनके नाम बताओ।	प्रत्यक्ष प्रमाण १ और परोक्ष प्रमाण २।
प्रत्यक्ष प्रमाण कितने प्रकार से वर्णन किया गया है।	दो प्रकार से।
उनके नाम बतलाओ।	इन्द्रिय प्रत्यक्ष प्रमाण १ और नो इन्द्रिय प्रत्यक्ष प्रमाण।
इन्द्रिय प्रत्यक्ष प्रमाण किसे कहते हैं।	जो पांचो इन्द्रियों के प्रत्यक्ष होवे—जैसे जो शब्द सुनने में आते हैं वेह श्रुतेन्द्रिय के प्रत्यक्ष, होते हैं, जो रूप के पुद्गल देखने में आते हैं, वेह चक्षुरिन्द्रिय के प्रत्यक्ष हैं उसी प्रकार पांचों इन्द्रियों के विषय में जानना चाहिये। अर्थात् जिन पदार्थों का पांचों इन्द्रियों द्वारा निर्णय किया जाता है उन्हें ही इद्रिय प्रत्यक्ष कहते हैं।

प्रश्न	उत्तर
नो इन्द्रिय प्रत्यक्ष किसे कहते हैं।	नो इन्द्रिय प्रत्यक्ष उसे कहते हैं जो इन्द्रियों के विना सहारे केवल आत्मा द्वारा ही पदार्थों का निर्णय किया जाए।
नो इन्द्रिय प्रत्यक्ष ज्ञान कितने प्रकार से वर्णन किया गया है।	दो प्रकार से।
उनके नाम बतलाओ।	देश प्रत्यक्ष १ और सर्व प्रत्यक्ष २
देश प्रत्यक्ष किसे कहते हैं।	जिस आत्मा के ज्ञाना वरणीय और दर्शना वरणीय कर्म के सर्वथा आवरण दूर नहीं हुए हैं किन्तु देश मात्र आवरण दूर होगया है सो वह आत्मा जिन पदार्थों का निर्णय करता है वा अपने आत्मा द्वारा उन पदार्थों को देखता है उसे ही देश प्रत्यक्ष कहते हैं।

प्रश्न	उत्तर
देश प्रत्यक्ष के कितने भेद हैं।	दो भेद।
वे कौन २ से हैं।	अवधि ज्ञान नो इन्द्रिय देश प्रत्यक्ष और मनः पर्यव ज्ञान नो इन्द्रिय देश प्रत्यक्ष।
अवधि ज्ञान देश प्रत्यक्ष किसे कहते हैं।	जो रूपि पदार्थ हैं वह उनको अपने ज्ञान में प्रत्यक्ष देखता है किन्तु जो धर्मादि द्रव्य हैं उनको वह अपने ज्ञान में प्रत्यक्ष नहीं देखता।
मनः पर्याय ज्ञान देश प्रत्यक्ष किसे कहते हैं।	जो—मन के पर्यायों को भी जान लेता है मनके पर्यायों को (भावों) जानता है।
नो इन्द्रिय सर्व प्रत्यक्ष ज्ञान किसे कहते हैं।	नो इन्द्रिय सर्व प्रत्यक्ष ज्ञान केवल ज्ञान का नाम है क्योंकि— केवल ज्ञान क्षायिक भाव में होता है इसी ज्ञान वाले को सर्वज्ञ और सर्वदर्शी कहते हैं।

प्रश्न	उत्तर
प्रत्यक्ष ज्ञान कैसा होता है।	यह अति निर्मल और विशद होता है केवल आत्मा पर ही इसकी निर्भरता है इन्द्रियों की सहायता की यह ज्ञान इच्छा नहीं रखता इसी लिए। इस ज्ञान को अतीन्द्रिय ज्ञान भी कहते हैं ज्ञाना वरणीय १ दर्शना वरणीय २ कर्मों के क्षय से इसकी उत्पत्ति मानी जाती है।
परोक्ष ज्ञान किसे कहते हैं।	जो इन्द्रियादि के सहारे से प्रादुर्भूत हो और फिर आत्मा द्वारा उस का प्रमाण सहित निर्णय किया जाए।
रोक्ष ज्ञान के कितने भेद हैं	पांच—५
वे कौन २ से हैं।	स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान, और आगम (शास्त्र)

प्रश्न	उत्तर
स्मृति ज्ञान किसे कहते हैं।	पहिले संस्कार से जो ज्ञान उत्पन्न होता है उसे स्मृति ज्ञान कहते हैं —जैसे यह वही देवदत्त है इत्यादि,
प्रत्यभि ज्ञान किसे कहते हैं।	जो—प्रत्यक्ष और स्मृति की सहायता से उत्पन्न होता है उस ज्ञान को प्रत्यभिज्ञान कहते हैं जैसे कोई पुरुष किसी के पास खड़ा है तो उसको देखने वाले ने कहा कि— यह वही पुरुष है जिसको मैंने वहां पर देखा था वा गौ के सदृश यह नीलगाय है इत्यादि।
तर्क ज्ञान किसे कहते हैं।	जो अन्वय—और व्यतिरेक की सहायता से उत्पन्न होता है उसेही "तर्क" ज्ञान कहते हैं।

प्रश्न	उत्तर
अन्वय किसे कहते हैं ।	जिसके होने से दूसरे पदार्थ की सिद्धि पाई जावे जैसे आग होने से धूआं होता है उसे अन्वय कहते ह ।
व्यतिरेक किसे कहते हैं ।	जिसके न होने से दूसरे पदार्थ की भी असिद्धि होजावे—जैसे आग के न होने से धूम भी नहीं होता ।
अन्वय का दूसरा नाम क्या है	उपलब्धि ।
व्यतिरेक का दूसरा नाम क्या है ।	अनुपलब्धि ।
अनुमान किसे कहते हैं ।	साधन के द्वारा जो साध्य का ज्ञान होता है उसे ही अनुमान कहते हैं ।
हेतु किसे कहते हैं ।	जो साध्य के साथ अविनाभावापन्न से निश्चित हो, अर्थात् साध्य के बिना होही न सके उसेही हेतु कहते हैं ।
अविना भाव किसे कहते हैं ।	जो सह भाव नियम को और क्रम भाव को नियम को धारण किये हुए हो ।

प्रश्न	उत्तर
सहभाव नियम किसे कहते हैं।	जो सदैव साथ २ ही रहे पदार्थ उसी का नाम सह भाव नियम होता है। जैसे—रूप में रस अवश्य ही होता है तथा "व्याप्य" और व्यापक पदार्थों में अविना भाव सम्बन्ध होता है जैसे वृक्षत्व "व्यापक" और शिश पात्व व्याप्य है।
क्रम भाव नियम किसे कहते हैं।	पूर्व चर और उत्तर पदार्थों में तथा कार्य कारणों में क्रम भाव नियम होता है जैसे- कृतिका उदय पहले होता है और उसके पीछे रोहिणी का उदय होता है तथा अग्नि के बाद धुआं होता है इस प्रकार के भावों का तर्क से निर्णय किया जाता है।

प्रश्न	उत्तर
साध्य किसे कहते हैं।	जो पक्षवादी का माना हुआ हो और प्रत्यक्षादि प्रमाणों से असिद्ध न किया गया हो। वही साध्य कहा जाता है। अर्थात् जोसिद्ध करना है वही साध्यहोता है।
आगम किसे कहते हैं।	जो शास्त्र आप्त प्रणीत हैं वही आगम हैं तथा आप्त के वचन आदि से होने वाले पदार्थों के ज्ञान को आगम कहते हैं।
आप्त किसे कहते हैं।	जो यथार्थ वक्ता हो और राग द्वेष से रहित हो वही आप्त होता है क्योंकि जो जीव राग द्वेष से युक्त है वह कभी भी यथार्थ वक्ता नहीं हो सकता। किन्तु जिसका राग द्वेष नष्ट होगया है वास्तव में वही आप्त है और जो उसके वचन होते हैं उन्हें ही आप्त वाक्य कहते हैं।

प्रश्न	उत्तर
वाक्यार्थ ज्ञान का हेतु क्या है।	जिसमें तीन बातें पाई जावें जैसे—आकांक्षा—योग्यता—और सन्निधि—
आकाङ्क्षा किसे कहते हैं।	एक पद का पदान्तर में व्यतिरेक (विशेष) प्रयोग किये हुये अन्वय (सम्बन्ध) का अनुभव (तजरबा) न होना आकांक्षा कहलाती है।
योग्यता किसे कहते हैं।	अर्थ के अबाध (रुकावट का न होना) का नाम योग्यता है ।
सन्निधि किसे कहते हैं।	पदों का अविलम्ब (शीघ्र) से उच्चारण करना ।

प्रश्न	उत्तर
इसमें कोई दृष्टान्त दो।	जैसे--किसी ने कहा कि-शास्त्र शीघ्र पढ़ो। इस वाक्य में आकांक्षा योग्यता-और सन्निधि तीनों का अस्तित्व है तब ही शास्त्र शीघ्र पढ़ो। इस वाक्य से बोध हो सकता है-यदि इन तीनों पदों को भिन्न २ ता से पढ़ें। जैसे-शास्त्र-फिर कुछ समय के पश्चात् "शीघ्र" कह दिया तदनु बहुत समय के पीछे "पढ़ो" इस क्रिया पद का प्रयोग कर दिया इस प्रकार पढ़ने से वाक्य से यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती अतः उक्त प्रथ वाला ही वाक्य प्रमाण हो सकता है।
अभाव किसे कहते हैं।	भाव का न होना वही अभाव होता है।

प्रश्न	उत्तर
अभाव कितने कथन किये गये हैं !	चार ।
उनके नाम बतलाओ ।	प्राग भाव, प्रध्वंसा भाव, अत्यन्ता भाव, अन्योऽन्या भाव,
प्राग भाव किसे कहते हैं ।	जैसे घट की उत्पत्ति के पहिले मिट्टी में घट का प्राग भाव कहा जाता है अर्थात् कारण रूप मिट्टी तो होती है किन्तु कार्य रूप का अभाव ही माना जाता है ।
प्रध्वंसा भाव किसे कहते हैं	जब कार्य रूप घट बनगया है तो फिर उस घट का विनाश भी अवश्य होगा अतः विनाश काल को प्रध्वंसा भाव कहते हैं ।

प्रश्न	उत्तर
अत्यन्ता भाव किसे कहते है।	जैसे जीव से अजीव नहीं होता अजीव से जीव नहीं बनसकता यह दोनों पदार्थ परस्पर अत्यन्ता भाव में रहते हैं इन्हींका नाम अत्यन्ता भाव है।
अन्योऽन्या भाव किसे कहते है।	जैसे घोड़ा बैल नहीं होसकता, बैल घोड़ा नहीं ह सकता—जो जिसका वर्तमान में पर्याय है उसका भावपर्यन्त वही रहता है। अन्य नहीं—इसी का नाम अन्योऽन्या भाव है।
प्रतिज्ञा किसे कहते है।	जैसे यह पर्वत अग्नि वाला है इस बात की अनुभूति को प्रतिज्ञा कहते है।
हेतु किसे कहते है।	जैसे यह पर्वत अग्नि वाला इस लिये है कि—इससे धूआं निकलता है—इसको हेतु कहते

प्रश्न	उत्तर
उदाहरण किसे कहते हैं।	जैसे जो जो धूम वाला होता है सो सो आग वाला होता है। यही उदाहरण है।
उपनय किसे कहते हैं।	जो उदाहरण का प्रमाण है वही विशद उपनय कहलाता है।
निगमन किसे कहते हैं।	जैसे जो जो धूम वाला होता है सो सो आग वाला होता है उसी प्रकार यह पर्वत भी धुएं के देखने से निश्चित होगया है कि—यह भी आग वाला है।
अनुमान प्रमाण के मुख्य कितने भेद हैं।	तीन।
उनके नाम बतलाओ।	पूर्ववत् १, शेषवत् २, दृष्टसाधर्म्यवत ३।

प्रश्न	उत्तर
पूर्ववत् किसे कहते हैं।	जैसे किसी स्त्री का पुत्र बाल्यावस्था में कहीं चला गया जब फिर वह अपने नगर में आगया तब उसकी माता ने उसके पूर्व चिन्हों को देख कर निश्चय किया कि—यह मेरा ही पुत्र है तथा बाढ़ का ज्ञान धूम के चिन्ह देखने से आग का ज्ञान इत्यादि को पूर्ववत् कहते हैं।
शेषवत् के कितने भेद हैं।	पांच।
उनके नाम बतलाओ।	कार्य, कारण, गुण, अवयव, आश्रय,
कार्य किसे कहते हैं।	कारण से कार्य का ज्ञान होना जैसे शंख के शब्द से शंख का ज्ञान इत्यादि,
कारण किसे कहते हैं।	कारण से कार्य की उत्पत्ति होना—जैसे—तंतुओं से वस्त्र, मृत्पिण्ड से घट इत्यादि,

प्रश्न	उत्तर
गुण किसे कहते हैं।	सुवर्ण निकष से जाना जाता है अर्थात् कसोटी पर सुवर्ण के गुण देखे जाते हैं पुष्प गंध से जाना जाता है, लवण रस से इत्यादि।
अवयवज्ञान किसे कहते हैं।	अवयव से अवयवी का ज्ञान होजाता है जैसे—शृंगसे शृंगी का ज्ञान, दांतों से हाथी का ज्ञान, मोर पिच्छी से मोर का ज्ञान, खुर से घोड़े का ज्ञान, दो पद से मनुष्य का ज्ञान, केशरसे सिंह ज्ञान, एक सिक्थ मात्र के देखने से चावलोंके पकनेका ज्ञान, कवि का एक गाथा के बोलने से कविपने का ज्ञान, इत्यादि अवयवों से अवयवी का ज्ञान होता है।

प्रश्न	उत्तर
आश्रय ज्ञान किसे कहते हैं।	जैसे–धूम से आग का ज्ञान बगलों से जल का ज्ञान, बादलों से वृष्टि का ज्ञान, शीलाचार से कुल पुत्र का ज्ञान इत्यादि को आश्रय ज्ञान कहते हैं।
दृष्टि साधर्म्यवत् किसे कहते हैं।	दृष्टि साधर्म्य के दो भे है–जैसे सामान्य दृष्ट औ विशेष दृष्ट २
सामान्य दृष्ट किसे कहते हैं।	जैसे–एक पुरुष है उस प्रकार और पुरुष भी हो है तथा जैसे एक मुद्रा होत है उसी प्रकार और मुद्रा भी होती हैं।

प्रश्न	उत्तर
विशेष दृष्ट किसे कहते हैं।	जैसे किसी ने-किसी को किसी स्थान पर देखा तो उसने यह निश्चय किया कि-मैंने इस को अमुक स्थान पर देखा था यह वही पुरुष है इत्यादि प्रत्यभिज्ञान को विशेष दृष्ट कहते हैं।
जब तुम प्रवाह से संसार को अनादि मानते हो तो फिर-यह प्रासादादि प्रवाह से अनादि क्यों नहीं है।	प्रियवर! पुद्गल द्रव्य के पर्याय में सादि सान्त भांगा बतलाया गया है सो जब जैन शास्त्र ही इन कार्यों को सादि सान्त मानते हैं तो फिर इन प्रासादादि को प्रवाह से अनादि बने बनाए कैसे मानें-तथा यह प्रासादादि प्रवाह से बनाने अनादि चले आते हैं किन्तु पर्याय से आदि है-जैसे-प्रवाह से मनुष्य अनादि चले आते हैं तद्वत् ही उन की कृतियें क्रियाएं भी प्रवाह से अनादि हैं।

प्रश्न	उत्तर
हमारे विचार में विना बनाये तो कोई वस्तु नहीं बन सकती।	प्रियवर! जब तुम जीव ईश्वर और प्रकृति को अनादि मानते हो तो बतलाईये यह विना बनाये कैसे बन गये।
जैन धर्म का मन्तव्य क्या है।	जैन धर्म का मन्तव्य यही है कि—इस अनादि संसार चक्र में अनादि काल से जीव अपने किये हुये कर्मों द्वारा जन्म मरण करते चले आये हैं अपितु वेद कर्म प्रवाह से अनादि हैं पर्याय से कर्म आदि हैं उन कर्मों को सम्यग् ज्ञान, सम्यग दर्शन, सम्यग् चारित्र, द्वारा क्षय करके मोक्ष प्राप्त करना है।
सम्यग् ज्ञान किसे कहते हैं।	अच्छा ज्ञान—"यथार्थ ज्ञान"।

प्रश्न	उत्तर
सम्यग् दर्शन किसे कहते हैं।	सच्चा श्रद्धान—"यथार्थ निश्चय"
सम्यग् चारित्र किसे कहते हैं।	सच्चा आचरण—"यथार्थ चारित्र"
सम्यग् शब्द किस लिये जोड़ा गया है।	संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय, इन दोषों के दूर करने के लिये।
संशय ज्ञान किसे कहते हैं।	जिस ज्ञान में संशय उत्पन्न हो जाये, जैसे क्या यह, स्थाणु है वा पुरुष है"
विपर्यय ज्ञान किसे कहते हैं।	विपरीत ज्ञान, जैसे—सीप में चांदी की बुद्धि तथा मृग तृष्णा का जल।
अनध्यवसाय ज्ञान किसे कहते हैं।	जैसे मार्ग में चलते हुए, पाद में (पैर) में कण्टक लग गया तो फिर यह विचार करना कि—पाद में क्या लगा है इस प्रकार के संशय को अनध्यवसाय कहते हैं।

प्रश्न	उत्तर
लक्षण किसे कहते हैं।	अनिर्धारित वस्तु समूह में से किसी एक विवक्षित वस्तु का निर्धार कराने वाले हेतु को लक्षण कहते हैं।
लक्षण कितने प्रकार का होता है।	दो प्रकार का।
उन के नाम बतलाओ।	आत्म भूत लक्षण और अनात्म भूत लक्षण,,
आत्म भूत लक्षण किसे कहते हैं।	जो वस्तु के स्वरूप से भिन्न न हो उस को आत्म भूत लक्षण कहते हैं, जैसे अग्नि का लक्षण उष्णता "यह लक्षण अग्नि का आत्म भूत कहा जाता है।
अनात्म भूत लक्षण किसे कहते हैं।	जो आत्म स्वरूप से भिन्न हो उसी को अनात्म भूत लक्षण कहते हैं—जैसे, दण्डे वाले को लाओ "यह दण्ड लक्षण" "अनात्म भूत कहा जाता है"

प्रश्न	उत्तर
लक्षण भास किसे कहते हैं ।	जो वास्तविक लक्षण तो नहीं हो परन्तु लक्षण सरीखा मालूम पड़े उस को लक्षण भास कहते हैं"
अव्याप्ति दोष किसे कहते हैं	जो लक्ष्य के एक देश में रहे उसको अव्याप्त कहते हैं" जैसे गौ का लक्षण शावलपना।
अति व्याप्ति दोष किसे कहते हैं ।	जो लक्ष्य मात्र में रह कर अलक्ष्य में भी रहे उस को अति व्याप्ति लक्षण कहते हैं जैसे—गौ का लक्षण "पशु-पना" यद्यपि—गौ भी पशु है परन्तु यह लक्षण भैंसादि में भी पाया जाता है इसीलिए। यह अति व्याप्ति दोष कहा जाता है ॥

प्रश्न	उत्तर
असंभव दोष किसे कहते हैं।	जिस का लक्षण में रहना किसी प्रकार से भी सिद्ध न हो, जैसे मनुष्य का लक्षण सींग" यह मनुष्य का लक्षण किसी भी मनुष्य में घटित नहीं होता इस लिये इस लक्षण को असम्भवी लक्षण कहते हैं।
स्याद्वादशब्द का क्या अर्थ है।	यह पदार्थ इस प्रकार से है और इस प्रकार से नहीं है,जैसे जो पदार्थ है वह अपने गुण में सद्रूप है पर गुण में असद्रूप है इस को स्याद्वाद कहते हैं।
	तथा यह पदार्थ ऐसे भी है और ऐसे भी है इसप्रकार के कथन को स्याद्वाद कहते हैं।

प्रश्न	उत्तर
आत्मा का आत्मभूत लक्षण कौनसा है।	चैतन्यता—उपयोग और बलवीर्य यह दोनों लक्षण आत्मा के आत्म भूत हैं
अनात्म भूत लक्षण कौनसा है।	जैसे "क्रोधी आत्मा" इत्यादि क्योंकि क्रोध के परमाणु आत्मा के आत्म भूत में नहीं होते किन्तु वास्तव में पुद्गलास्तिकाय का द्रव्य है राग द्वेष के कारण से वह परमाणु आत्मा में आते हैं—यदि उन को आत्म भूत कहा जाए तो वह कभी भी आत्मा से पृथक् न होवे परन्तु आत्मा उन परमाणुओं को छोड़ कर मोक्ष हो जाता है वा जीवन मुक्त हो जाता है।

दशवां पाठ।

(श्रमणो पासक विषय)

प्रिय सुज्ञ पुरुषो ! इस असार संसार में सदा चार ही जीवन है सदा चार से ही सर्व गुणों की प्राप्ति हो सकती है जिस जीव ने सदा चार को मित्र नहीं बनाया उस का जीवन इस संसार में भार रूप ही होता है, क्योंकि—यदि सदा चार से रहित जीवन है तो उस का जीवन पशु के समान ही होता है।

खान, पान, भोग, शीत, उष्ण इत्यादि जो पशु कष्ट सहन करते हैं वही कारण सदा चार से पतित जीव को मिल जाते हैं आदर्श रूप वही जीव बन सकता है जो सदा चार से अलंकृत हो, जिस का जीवन पवित्र नहीं है, उस का प्रभाव किसी पर पड़ नहीं सकता, धर्म पथ से भी वह गिर जाता है, लोग उस को सुदृष्टि से नहीं देखते हैं।

अतएव ! मनुष्यों के जीवन का सार सदा चार ही है संसार पक्ष में अनेक प्रकार के सदा चार होने पर भी

मुनियों की संगति करना और उन की यथोचित सेवा करना यह परम उच्च कोटि का सदा चार का अंग है, बहुत से आत्मा अच्छे आचार वाले होने पर भी साधु संगति से वञ्चित ही रहते हैं वे सर्व प्रकार से सदा चार के फल को उपलब्ध नहीं कर सकते। ज्ञान और विज्ञान से वे पृथक् ही रह जाते हैं।

इस लिये! जो साधु गुणों से युक्त मुनि हैं उन्हीं का नाम श्रमण है सदा चारियों के लिये वह "उपास्य" है सदा चारी उस के उपासक होते हैं इसी लिये! सदा चारियों का नाम, "श्रमणो पासक" कहा जाता है, अपितु सदा चार की प्राप्ति गुणों पर ही निर्भर है।

गुणों की प्राप्ति करना प्रत्येक व्यक्ति का मुख्य कर्तव्य है यह गुण कहीं से प्राप्त होजाएं वहां से ही ले लेने चाहियें।

सज्जनो! गुण ही जीवन का सार है गुणों से ही जीव सत्कार के पात्र बन सकते हैं, प्रतिष्ठा भी गुणों से ही मिल सकती है जैन ग्रन्थों में श्रमणो पासक के २१ गुण वर्णन किए गये हैं जैसे कि—

१ क्षुद्र वृत्तिवाला न होना और अन्याय से धन उत्पन्न न करना क्योंकि– जो अन्याय से धन उत्पन्न करते हैं वे सदा चारियों की पंक्ति में नहीं गिने जाते न वे धन्य-वाद के पात्र ही हैं मित्रो ! अन्याय करने का फल कभी भी अच्छा नहीं होता इसलिये अन्याय न करना चाहिये, और क्षुद्र वृत्तिवाला पुरुष सभ्यता से गिर जाता है सदैव पिशुनता (चुगली) में ही लगा रहता है और धर्म कर्म से गिर जाता है इस लिए ! पहिला गुण यही है कि– अक्षुद्र होना । २ रूपवान्–जैसे कोकिला का स्वरूप है कुरूपों का विद्या रूप है उसी प्रकार मनुष्यों का शील रूप है जो पुरुष शील से रहित होता है वह शरीर के सुन्दर होने पर भी असुन्दर ही गिना जाता है लोगों में माननीय नहीं रहता–यदि उसके पास धन भी है तो भी वह सभ्य पुरुषों में निंदनीय ही होता है जैसे–रावण– अतिसुन्दर होने पर भी लोगों में उस की सुन्दरता नहीं गिनी जाती अपितु जिन पुरुषों ने अपने शील को नहीं छोड़ा और प्रतिज्ञा में दृढ़ रहे हैं वे संसार की दृष्टि में पूजनीय हैं । अतएव ! सदाचारियों का रूप शील है यद्यपि पांचों इन्द्रिय पूर्ण, शरीर निरोग्यता यह भी गुण रूपवान्

के गिने जाते हैं और इन्हीं गुणों से रूपवान् कहा जाता है परन्तु वास्तव में शील गुण ही प्रधान माना जाता है अतएव ! यह गुण अवश्य ही धारण करने चाहियें।

३ प्रकृति सौम्य—स्वभाव से शुद्ध हृदय वाला होवे—क्योंकि जब आधार (भाजन) ठीक होगा तब ही उस में गुण निवास कर सकते हैं—जिन की प्रकृति कठिन वा कुटिल है वे कदापि धर्म के योग्य नहीं हो सकते—स्वच्छ भूमि में ही शुद्ध बीज की उत्पत्ति हो सकती है जो भूमि अशुद्ध है उस में शुद्ध बीज भी अंकुर नहीं दे सकता इसी प्रकार जिस आत्मा का हृदय शुद्ध है प्रकृति सौम्य है वही गुणों का भाजन हो सकता है जैसे पशुओं में गौ—मृग—आदि जीव कुटिल प्रकृति वाले न होने के कारण लोगों के प्रेम के पात्र बन जाते हैं और गिदड़ (स्याल) लोमड़ी चित्ता आदि जीव सरल और सौम्य प्रकृति वाले न होने से वे विश्वास के पात्र नहीं होते अतएव ! प्रकृति सौम्य अवश्य ही होनी चाहिए।

लोकप्रिय—अपने गुणों द्वारा लोक में प्रिय होना चाहिए क्योंकि—प्रिय कार्य करने वाला और प्रिय

बोलने वाला किसी को भी अप्रिय नहीं लगता जो उक्त गुणों से गिरे हुए हैं वे किसी को भी प्रिय नहीं लगते क्योंकि लोक तो जिस प्रकार देखते हैं उसी प्रकार कह देते हैं अतएव लोक प्रिय बनना अपने स्वाधीन ही है जब अवगुणों को छोड़ दिया तब अपने आप सब का प्रिय लगने लग जाता है—जैसे क्रोध, माया, लोभ, छल, चुगली, धूर्त्तपना, हठ, इत्यादि जब अवगुणों को छोड़ दिया तब लोक प्रिय बनना कोई कठिन नहीं है फिर उत्तम वही होता है जो अपने गुणों से सुप्रसिद्ध हो—किन्तु जो पिता के नाम से प्रसिद्ध है वह मध्यम है इस लिये ! उत्तम गुणों द्वारा लोक में सुप्रतिष्ठित होना चाहिये। इसी से लोक में वा राजादि की सभा में माननीय पुरुष बन जाता है ॥

५—अक्रूरचित्त—चित्त क्रूर न होना चाहिए—जिन आत्माओं का चित्त क्रूर होता है वह निर्दयी कहलाते हैं क्रूर चित्त वाले आत्मा किसी पर भी परोपकार नहीं कर सकते वे सदैव औरों को छलने के भावों में लगे रहते हैं उन के सामने यदि कोई हिंसादि क्रियाएँ करते

हों फिर भी वह आर्द्र चित्त नहीं होते तथा क्रूर चित्त वाले जीव धार्मिक कार्यों में भी भाग नहीं लेते न वे धार्मिक जनों को श्रेष्ठ ही समझते हैं अपितु उन से सदैव क्रूर ही कर्म होते हैं जिन का फल उनके लिए पशु योनि वा नरक गति है।

सज्जनों! इस अवगुण वाला जीव कदापि श्रेष्ठ कर्म में प्रविष्ट नहीं होता जैसे सांप का विष उगलने का स्वभाव होता है ठीक उसी प्रकार क्रूर चित्त वाले जीव का स्वभाव भी निर्दय भाव में ही रहता है अतएव सदाचारी जीव को अक्रूर चित्त वाला ही होना चाहिए।

६—भीरु—पाप कर्म के करने से भय मानना यही भीरु शब्द का अर्थ है अर्थात् पाप कर्म से सदैव भय मानता रहे जैसे लोक—सांप वा सिंहादि पशुओं से डरते हैं तथा शत्रु से भय मानते हैं व राजादि का भय मानते हैं उसी प्रकार पाप कर्म का भी भय मानना चाहिए क्योंकि जो कर्म किया गया है वह फल अवश्यमेव देगा अतएव! पाप करते भय खाना चाहिए, किन्तु धर्म करते हुए निर्भीक बन जाना चाहिये—माता पिता वा राजादि भी यदि धर्म से प्रति-

कूल उपदेश दें तो उसे भी न मानना चाहिए किन्तु यदि देवते भी धर्म से गिराना चाहें तो भी न गिरना चाहिये, अतएव सिद्ध हुआ कि पाप कर्म करते समय भय युक्त और धर्म करते समय निर्भीक बनना सुपुरुषों का मुख्य कर्त्तव्य है।

७—अशठ—धूर्त न होना—जो पुरुष मायावी होतेहैं वह भी धर्म के योग्य नहीं होते क्योंकि—माया (छल) नाम एक प्रकार आभ्यन्तरिक मल है जब तक वह आत्मा से निकल न जाये तब तक आत्मा शुद्धि के मार्ग पर नहीं आसकता जैसे किसी रोगी के उदर में मल विकार विशेष हो, फिर उस को बल मद औषधी भी फलदायक नहीं हो सकती जब तक कि—मल न निकल जाये। जब मल निकल जाता है तब उस को औषधियों का सेवन सुख मद हो जाता है उसी प्रकार जब आत्मा के अन्तःकरण से माया रूप मल निकल जाता है तब उसमें भी ज्ञानादि ठीक रह सकते हैं, इस लिये! सदा चारी पुरुष धूर्तता से रहित होने चाहिये।

८—दाक्षिण्य—निपुणता होनी चाहिये—क्योंकि—जो पुरुष निपुण होते हैं वही धर्मादि क्रियाएं कर सकते हैं

किन्तु जो मूढ़तादि गुणों से युक्त हैं उन से धार्मिक आदि क्रियाएं होनी असम्भव प्रतीत होती हैं क्योंकि- शास्त्रों में लिखा है कि- तीन आत्माएं शिक्षा के अयोग्य हैं जैसे कि-दुष्ट, मूर्ख, और क्रोधी, यह तीनों आत्मा शिक्षा के अयोग्य होते हैं यद्यपि मूर्ख किसी का नाम नहीं है किन्तु जो अपने हित की बात को नहीं सुनता यदि सुनता है तो उस को मानता नहीं है उसी का नाम मूर्ख है जैसे किसी मूर्ख को ज्वर का आवेश हो गया किन्तु उस को फिर तृतीय ज्वर आने लग गया तब डाक्टर साहब ने पूछा कि-तुम्हें ज्वर नित्य प्रति आता है तो उस ने उत्तर में निवेदन किया कि-डाक्टर साहब नित्य प्रति तो नहीं आता किन्तु एक दिन आता है और एक दिन नहीं आता, तो फिर डाक्टर साहब ने कहा कि-क्या तुम्हें वारी का ज्वर है तो उस ने उत्तर में कहा कि नहीं साहब, वारी का ज्वर तो मुझे नहीं है डाक्टर साहब कहने लगे, कि, भाई, इसी को वारी कहते हैं तो उस मूर्ख ने कहा कि-मैं तो इस को वारी नहीं मान सकता, फिर डाक्टर साहब ने कहा कि-तुम वारी किसे मानते हो तो उसने डाक्टर साहब से कहा कि-डाक्टर

साहब मैं बारी बस को मानता हूं, यदि एक दिन ज्वर आप को चढ़ जाए और एक दिन मुझे चढ़ जाए, जब ऐसे हो जाए तो मैं बारी मानूंगा, इतनी बात सुन कर डाक्टर साहब हंस पड़े, इससे सिद्ध हुआ कि मूर्ख किसी का नाम नहीं है जो हित की बात नहीं समझता वही मूर्ख है—गृहस्थ को दाक्षिण्य होना चाहिये।

६—लज्जालु—अकार्यों से लज्जा करने वाला, पाप कर्म करते समय लज्जा करनी चाहिये, लज्जा से ही गुणों की प्राप्ति हो सकती है जो पुरुष निर्लज्ज होवे हैं वे पाप कर्मों में प्रवेश कर जाते हैं, इस लिए। माता, पिता, गुरु, स्थविर (वृद्ध) इत्यादि की लज्जा करनी चाहिये, पापों से बचना चाहिए, पुरुषों और स्त्रियों की लज्जा ही आभूषण है इसी के द्वारा धर्म पंक्ति में आसकते हैं काम बिगड़ते हुओं को लज्जा वाला पुरुष ठीक कर सकता है अतएव सिद्ध हुआ लज्जा करना सुपुरुषों का मुख्य कर्तव्य है।

१०—दयालु—दया करने वाला त्रस और स्थावरों की सदैव रक्षा करने वाला इतना ही नहीं किन्तु जो

अपने ऊपर अपकार करने वाले हैं उन्हों पर भी दया भाव करने वाला होवे—क्योंकि जहां पर दया के भाव हैं वहां ही धर्म रह सकता है जहां दया के भाव ही नहीं हैं तो फिर वहां पर कुछ भी नहीं है इसलिये ! सब जीवों पर दया करना यही सुपुरुषों का लक्षण है किन्तु हिंसा तीन प्रकार से कथन की गई है जैसे मन, वाणी, और काय, मन से किसी के हानिकारक भाव न करने चाहिये वाणी से कटुक वचन न बोलना चाहिये, काय से किसी को पीड़ा न देनी चाहिये, जिस के तीनों योगों से दया के भाव हैं वह सर्व प्रकार से दयालु कहा जा सकता है अतएव ! दयावान् ही गुणों का भाजन बन सकता है।

११—माध्यस्थ—माध्यस्थ भाव को अवलम्बन करने वाला यदि कोई कार्य विपरीत किसी ने कर दिया है तो उस को शिक्षा करनी तो आवश्यकीय है किन्तु उस के ऊपर राग द्वेष न करना चाहिये, क्योंकि जिस ने अनुचित कर्म किया है उस का फल तो उसने भोगना ही है परन्तु उस के ऊपर रागद्वेष करके अपने कर्म न बंधलेने चाहिये, शिक्षा करना पुरुषों का धर्म है मानना न मानना

उस की इच्छा पर निर्भर है इस लिए ! जो श्रेष्ठ गृहस्थ हैं वे सदैव माध्यस्थ भाव का अवलम्बन किया करते हैं जो पुरुष माध्यस्थ भाव का अवलम्बन नहीं कर सकते हैं वे धर्म में भी स्थिर भाव नहीं रख सकते हैं, अतएव ! सिद्ध हुआ कि—माध्यस्थ भाव अवश्य ही अवलम्बन करना चाहिये।

१२–सौम्यदृष्टि–दर्शन मात्र से ही आनन्दित करने वाला, जिस की दृष्टि सौम्य होती है उस के मस्तक पर क्रोध के चिन्ह नहीं दिखाई पड़ते इस लिए ! जो उसके दर्शन कर लेता है उस का मन प्रफुल्लित हो जाता है—क्रोध, मान, माया, और लोभ के कारण से ही क्रूरदृष्टि हुआ करती है जब उस के चारों कषायों मन्द हो जाती हैं तब उस आत्मा की दृष्टि भी सौम्य दृष्टि बन जाती है इसलिए! यह गुण अवश्य ही धारण करना चाहिये।

१३–गुण पक्ष पाती–गुणों का पक्ष पात करना चाहिए किन्तु–जो कुल क्रम से कोई व्यवहार आ रहा हो किन्तु वह व्यवहार सभ्यता से रहित है तो उस के छोड़ने में पक्ष पात न करना चाहिए तथा यदि मित्र

कुपथ में खड़ा हुआ है और शत्रु ठीक मार्ग पर स्थित है तो उस समय गुणों का पक्ष पात करना चाहिए।

अपितु हठ करना अच्छा नहीं है–जो पुरुष गुणों का पक्ष पाति है वह सब का ही मित्र है, किन्तु वह किसी का भी शत्रु नहीं है अतएव! गुणों का पक्ष पात करना सभ्य पुरुषों का मुख्य कर्तव्य है जो गुणों के पक्ष पाती नहीं हैं किन्तु राग पक्ष हो दिखा रहे हैं वे धर्म के योग्य नहीं गिने जाते–अतः गुणों का ही पक्ष पात करना चाहिये।

१४–सत्कथा सुपक्ष युक्त–सत्कथा करने वाला और स्वपक्ष से युक्त अर्थात्–यथार्थ कहने वाला, शुद्ध जाति वाला वा अपने निर्णय किए हुए सिद्धान्त में दृढ़ता रखने वाला होना चाहिए–जब स्वसिद्धान्त में पूर्ण दृढ़ता हो जावे तो फिर असत्कथा कदापि न करनी चाहिये, यदि ऐसे कहा जाए कि–जब उस का सिद्धान्त दृढ़ है तो फिर वह असत्कथा कैसे कर सकता है तो इस का समाधान इस प्रकार किया जाता है कि–सत्य समझता हुआ उपहास्यादि क्रियाओं में भी असत्यकथा कदापि न

करे किन्तु यथार्थ ही कहने वाला होवे। तथा–जो हर मत वाले असत्कथा करने वाले हैं उन के संग को छोड़ देवे या असत्यकथा करने वालों की प्रशंसा भी न करे क्योंकि–उन की प्रशंसा करने से अज्ञात जन उन्हीं पर विश्वास करने लग जाते हैं तब उसका परिणाम अच्छा नहीं निकलता अतएव। सिद्ध हुआ कि–सत्कथा "स्वपक्ष युक्त" होना आवश्यकीय है तभी गुण आ सकते हैं।

१५–दीर्घ दर्शी– जो कार्य करना हो, पहिले उस का फला फल जान लेना चाहिए जब विचार से काम किया जायगा तब उस में विकृतिपणा उत्पन्न नहीं होता यदि हर एक कार्य में औत्सुक्य ही किया जायगा तो फिर न तो कार्य ही प्रायः सुधरता है और नहीं लोगों में प्रतिष्ठा मिलती है तथा बहुत से कार्य ऐसे होते हैं जिनके करते समय तो अच्छे लगते हैं किन्तु उन का परिणाम अच्छा नहीं निकलता और बहुत से कार्य ऐसे भी हैं जो करते समय तो यश विशेष नहीं मिलता परन्तु परिणाम में उस का नाम सदा के लिए स्थिर हो जाता है क्योंकि जो बुद्धि काम बिगाड़ करउत्पन्न होती है यदि वह बुद्धि पहिले ही उत्पन्न हो

जा न वो लोग ही हंसें और नहीं काम बिगड़े अतएव। जो कार्य करना हो उस के फल फल जानने के लिए दीर्घ दर्शी होना चाहिये यदि दीर्घ दर्शी गुण उत्पन्न न किया जाएगा तो हर एक काम में प्रायः हंसी का ही होना बना रहेगा।

१६—विशेषज्ञ—गुण और अगुण के जानने वाला होना चाहिये। क्योंकि—जो गुण और अगुण की परीक्षा नहीं कर सकता वह कदापि धर्म की परीक्षा भी नहीं कर सकता जिस की बुद्धि में पक्षपात नहीं है वही गुण और अवगुण की खोज में लग जाता है किन्तु जिस की बुद्धि पक्षपात से मलीमस हो रही है तो भला फिर वह गुण और अगुण की परीक्षा कैसे कर सकता है जहां पर तो उस का राग है वहां पर यदि अगुण भी पड़े हों तो उस को तो वह गुण ही दिखाई देते हैं यदि उसका राग नहीं है वहां गुण होने पर भी अवगुण दृष्टि गोचर होते हैं अतएव ! विशेषज्ञ होना आवश्यकीय सिद्ध हो गया विशेषज्ञ होना ही गुणों की परीक्षा करना है।

१७—वृद्धानुगः—वृद्धों की शैली पर चलने वाला—माता पिता गुरु आदि के विनय करने से हर एक गुण

प्राप्ति हो सकती है यदि विनय न किया गया तो इस गुण भी अवगुण हो जाता है, जैसे जल के सिंचन ने से वृक्ष प्रफुल्लित हो जाता है उसी प्रकार विनय से एक गुण की प्राप्ति हो जाती है वृद्धों के पथ पर चलने लोकापवाद भी मिट जाता है अपितु वृद्धों का मार्ग दि सुमार्ग होवे तो, यदि वृद्धों का मार्ग धर्म से प्रतिकूल वे तो उस के त्याग देने में किंचित् मात्र भी संकुचित भाव न करने चाहिए जैसे—बहुत से लोगों की कुल क्रम मांस भक्षण और मदिरा पान की प्रथा चली आती तो उस के त्यागने में विलम्ब न होना चाहिये, और बहुत से कुलों में धार्मिक नियम कुल क्रम से चले आवे हों जैसे—"जूआ, मांस, मदिरा, वेश्या संग, परनारी सेवन, चोरी, शिकार" इन का त्याग चला आता है तो इन नियमों को तोड़ना न चाहिये वा—स्वदार, सामायिक, पौषध, प्रतिक्रमण, के करने की जो प्रथा चली आती हो तो उसे भंग न करना चाहिये—और विनय धर्म का परित्याग भी न करना चाहिये यही "वृद्धानुग" है।

१८—विनीत—विनयवान् होना चाहिये-विनय से विगड़े हुए काम सुधर जाते हैं विनय धर्म का मूल है

विनय करने से ज्ञान की भी शीघ्र प्राप्ति हो जाती है, विनय से सत्पथ में आरूढ़ हो जाता है, जैसे सुवर्ण और रत्नों की हर एक को इच्छा रहती है उसी प्रकार विनयवान् की भी इच्छा सब को लगी रहती है उसकी प्रतिष्ठा बढ़ जाती है वह सब के लिये आधार रूप होजाता है—शास्त्रों में प्रवीणता के कारण से वह सब स्थानों पर आदर पाता है अतएव ! सब जीवों को विनयवान् होना चाहिये।

१६—कृतज्ञ—कृतज्ञ होना चाहिये—जिस ने किसी समय उपकार कर दिया है उस को विस्मृत न करना चाहिये—अपितु उस के किए हुए उपकार को स्मरण करके उस का उपकार विशेष मानना चाहिये, क्योंकि—शास्त्रों में लिखा है कि—चार कारणों से आत्मा अपने गुणों का नाश कर बैठते हैं जैसे कि—क्रोध करने से १, और दूसरों की ईर्षा करने से २, मिथ्या हठ करने से ३, कृतघ्न होने से ४, कृतघ्नता के समान कोई भी पाप नहीं बतलाया गया इस लिये ! कृतज्ञ होना चाहिये। अपितु जो कृतघ्न होते हैं वे विश्वास पात्र नहीं रहते और जैसे क्रोधी को बुद्धि छोड़ जाती है वा सूक्के हुये सरोवर को पक्षि छोड़ जाते हैं उसी प्रकार कृतघ्न पुरुष को सज्जन

पुरुष भी छोड़ देते हैं ॥ सो कृतज्ञ भी बनना चाहिये।

२०—परहितार्थकारी—सब जीवों का हितैषी होना श्रावक का मुख्य धर्म है—वा—जिस प्रकार उन जीवों को शान्ति पहुंचे अथवा अन्य जीवों के कष्ट दूर होवें उसी प्रकार श्रावक को करना चाहिए। परोपकार ही मुख्य धर्म है जो परोपकार नहीं कर सकता उस का जीवन संसार में भार रूप ही माना जाता है—ज्ञान के साथ परोपकार करना यह परम शूरवीरता का लक्षण है। परोपकारी सर्व स्थानों पर पूजनीय बन जाता है। तीर्थंकरों का नाम आज तक इस लिये लिया जा रहा है कि—उन्होंने असीम भर संसार भर में उपकार किया. लाखों जीवों को सन्मार्ग में स्थापन किया इसी कारण से वह सदा अमर हैं और सब जीवों के आश्रय भूत हैं अतः परहितार्थकारी बनना गृहस्थ का मुख्य धर्म है।

२१—लब्धलक्ष—माता पिता—गुरु आदि की चेष्टाओं को देख कर उनकी इच्छानुसार कार्य करने और उनको प्रसन्न रखना यही लब्धलक्षण है तथा धर्म दानादि में अग्रणीय बनना इतना ही नहीं किन्तु धर्म कार्यों में

अधिक भाग लेना और लोगों को धर्म कार्यों में उत्साहित करना वह सब क्रियायें लब्धलक्षता में ही गिनी जाती हैं तात्पर्य यह है कि—यावन्मात्र श्रेष्ठ कर्म हैं उन में बिना रोक टोक के आगे हो जाना, इसमें कोई भी सन्देह नहीं है कि संसारी कार्यों में लोग अग्रणीय होते ही हैं किन्तु जो धार्मिक कार्यों में अग्रणीय बनना है यही एक शूरवीरता का लक्षण है। धर्म दान और अधर्म दान का परस्पर इतना अन्तर है जैसे अमावस्या और पौर्णमासी का परस्पर अन्तर है, इसी प्रकार जो धर्मदान किया जाता है वह तो पौर्णमासी के समान है और जो अधर्मदान है वह अमावस्या की रात्री के तुल्य है। यदि ऐसे कहा जाए कि—धर्मदान कौनसा है और अधर्म कौनसा है तो इसका अन्तर इतना ही है कि—जिस दान करने से धर्म कार्यों में सहायता पहुंचे वा धर्मियों की रक्षा हो जावे उसे ही धर्मदान कहते हैं।

"तथा जिस दान करने से अधर्म की पोषण "हो और धर्म से विरुद्ध हो वही अधर्म दान कहलाता है जैसे हिंसक पुरुषों की सहायता करना और उनके किए

ये ! कार्यों की अनुमोदन करना यही अधर्म दान है"
सो-धर्मदान करना गृहस्थों का मुख्य धर्म है अतएव !
उपलक्ष गुण वाला गृहस्थ को अवश्य ही होना
चाहिए।

और गृहस्थों का यह भी नियम शास्त्रों में वर्णन
किया गया है कि-न्यायसे लक्ष्मी उत्पन्न करते हुए
गृहस्थों के योग्य है कि-यदि वे अपने समान कुल में
विवाह करते हैं तब तो वे शान्ति से जीवन व्यतीत कर
सकते हैं नहीं तो प्रायः अशान्ति उनकी बनी रहती है
तथा देशाचार को जो नहीं छोड़ता है वह भी धर्म से
पराङ्मुख नहीं हो सकता—यह बात मानी हुई है कि-
जिस देश की भाषा वा वेष ठीक रहता है वह देश
उन्नति के शिखर पर जा पहुंचता है, जिसकी भाषा
और वेष बिगड़ जाता है उस देश की उन्नति के दिन
पीछे पड़ जाते हैं,

जो गृहस्थ देश धर्म को ठीक प्रकार से समझते हैं
वे श्रुत वा चारित्र धर्म को भी पालन कर सकते हैं।

फिर किसी के भी अवगुणवाद न बोलने चाहिएं

किन्तु जो अध्यत्त पुरुष हैं उनके तो अवगुण वाद विशेष वर्जने योग्य हैं साथ ही जो गृहस्थ आय (लाभ) व्यय (खरच) का विवेक रखते हैं वे कभी भी प्रतिष्ठा की हानि के दुःख का अनुभव नहीं करते जो इन बातों का विचार कम रखते हैं वे अन्तिम दुःखों का ही अनुभव करते हैं और धर्म से भी उनकी रुचि कम हो जाती है अतएव! श्रमणोपासकों को बारह व्रतों के साथ ही अनेक और गुणों के धारण करने की आवश्यकता है।

जब गुणों का समूह इकट्ठा हो जाएगा, तब वे यथेष्ट सुखों की प्राप्ति कर सकेंगे, अतएव! सिद्ध हुआ कि— देश, जाति, और धर्म की, वही सेवा कर सकता है, जो पहले अपने गुणों (कर्तव्यों) को जानता हो—सो अपने कर्तव्यों को जान कर धर्मादि की अवश्य ही सेवा करनी चाहिए।

ग्यारहवाँ पाठ ।

(श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी जी)

प्रिय पाठको ! जिस महान् आत्मा का आज हम आप को कुछ परिचय देना चाहते हैं वे परम पूज्य जगत् प्रसिद्ध श्री भगवान् महावीर स्वामी जी हैं जिन का कि दूसरा नाम श्री वर्द्धमान भी है-यह भगवान् जैन धर्म के अंतिम चौबीसवें तीर्थंकर थे इन का समय बौद्ध समकालीन का था जिस को आज २५२० वर्ष के लगभग होते हैं यह महात्मा ईस्वी—५९९ वर्ष पहिले इस भारत वर्ष के क्षत्रिय कुंड पुर नामक नगर में जो उस समय परम रमणीय सर्व गुणों से पूर्ण था पानी के अतीव होने के कारण से दुर्भिक्ष का तो वहां पर अभाव ही था किन्तु राजा के पुण्य के प्रभाव से सर्व प्रकार के उपद्रव वहां शान्त हो रहे थे, मरी आदि रोगों से भी लोग शान्त थे किन्तु नई से नई कलाओं का आविष्कार करते थे जिस के कारण से वह "क्षत्रिय कुण्ड पुर" ग्राम ग्राम की अवस्था को छोड़ कर राजधानी की दशा को प्राप्त हो गया था ।

चारों ओर वह नगर आरामों और जलाशयों से सुशोभित हो रहा था और व्यापार के लिये वह नगर "केन्द्रस्थान" बन गया था "वहां पर" न्याय नीति में कुशल "शास्त्र विशारद" सर्व राजाओं के गुणों से अलंकृत—ज्ञात वंशीय सिद्धार्थ महाराज अनुशासन करते थे जिन के न्याय से प्रजा अत्यन्त प्रसन्न थी इसी कारण से प्रजा की ओर से सर्व प्रकार से उपद्रवों की शान्ति थी कला कौशलता की अत्यन्त वृद्धि होती जाती थी महाराजा सिद्धार्थ का एक छोटा भाई भी था जो "सुपार्श्व" नाम से सुप्रसिद्ध था महाराजा के अन्तरंग कार्यों में सहायक था और महाराजा सिद्धार्थ की राणी का नाम त्रिशला क्षत्राणी था जो स्त्री के गुणों (लक्षणों) से अलंकृत थी।

परन्तु पतिव्रत धर्म को अन्तः करण से पालन करती थी इसी लिए "सतियों में शिरोमणी थी" अतएव महाराजा सिद्धार्थ के साथ जिस का अत्यन्त स्नेह था जिस से गृह की लक्ष्मी "दिन दो गुनी रात चौगुनी" के न्याय से वृद्धि प्राप्त कर रही थी।

महाराजा के एक "नन्दि वर्द्धन" नाम वाला कुमार था जो ७२ कलाओं में निपुण और राज्य की धुरा को प्रेम से उठाए हुए था' इसी कारण से वह "युवराज" पदवी का भी धारक था और उस की एक कनिष्ठा भगिणी "सुदर्शना" नामा थी' जो शीलवती और सुशीला थी, "महाराजा सिद्धार्थ" श्री भगवान् पार्श्वनाथ प्रभु के मुनियों के श्रावक थे, और श्रावक वृत्ति को प्रसन्नता पूर्वक पालन करते थे।

एक समय की बात है कि महाराणी "त्रिशला" जब आपने पवित्र राज्य भवन के वास भवन में सुख शय्या में सोई पड़ी थी, तब अर्धरात्रि के समय पर महाराणी ने १४ स्वप्न देखे जैसे कि—

„हाथी १ वृषभ २ सिंह ३ लक्ष्मी देवी ४ पुष्पों की माला ५ चन्द्रमा ६ सूर्य्य ७ ध्वजा ८ कलश ९ सरोवर १० क्षीर समुद्र ११ देव विमान १२ रत्नों की राशि १३ अग्नि शिखा १४"। जब राणी जी ने इन चतुर्दश स्वप्नों को देख लिया तब उसकी आंख खुल गई फिर वह अपनी शय्या से उठकर महाराजा सिद्धार्थ के पास गई

राजा को मधुर वाक्यों से जगा कर अपने आए हुए चौदह स्वप्नों को विनय पूर्वक निवेदन किया। जिनको सुन कर महाराजा अत्यन्त प्रसन्न हुए और रानी से कहने लगे कि ! हे देवी तूने बड़े पवित्र स्वप्नों को देखा है जिसका फल यह होगा कि—हमारी सर्व प्रकार की वृद्धि होते हुए चक्रवर्ती कुमार उत्पन्न होगा।

इस प्रकार रानी को स्वप्न के फल बतला कर प्रातः काल में राजा ने अपने नगर के ज्योतिषियों को बुला कर चौदह स्वप्नों के फलादेश को पूछा तब ज्योतिषियों ने कहा कि हे राजन् ! इन स्वप्नों के फला देश से यह निश्चय होता है कि आप के घर में एक ऐसे राज कुमार का जन्म होगा जो कि चक्रवर्ती या तीर्थङ्कर देव होगा जिसकी महिमा का विवरण हम नहीं कर सकते तब श्री महाराज ने उन स्वप्न पाठकों का सत्कार और पारितोषिक देकर विसर्जन किया किन्तु उसी दिन से महारानी जी शास्त्रोक्त विधि के अनुसार गर्भ रक्षा करने लगी फिर सवा नौ मास के पश्चात् चैत्र शुक्ला १३ त्रयोदशी के दिन हस्त उत्तरा फाल्गुणी नक्षत्र के योग में आधी रात्रि के समय में श्री श्रमण भगवान्

महावीर स्वामी का शुभजन्म हुआ, जन्म दिन बड़े समारोह के साथ मनाया गया राजा के यहाँ आप का जन्म होते ही हर प्रकार से सुख बढ़ने लगा और राजा ने उत्साह पूर्वक बहुत सा दान भी किया और प्रजा को पहले की भांति उस से भी बढ़ कर हर प्रकार से सुख देने लगा इस प्रकार दिन व्यतीत होने लगे और आप के अन्य संस्कार भी समय २ पर बड़े समारोह से होते हुये पालना होती रही मगर आप का चित्त इस बाल्यावस्था से ही ले कर संसार से उदास रहता था सदैव यही भाव उत्पन्न रहते थे कि मैं अपनी आत्मा का सुधार करके परोपकार करूं परोपकार ही सत्-पुरुषों का धर्म है।

इस प्रकार के भाव होने पर भी माता पिता के अत्यन्त आग्रह से "यशोदा" राज कुमारी से विवाह किया गया फिर आप के गृह में कुमारी का जन्म हुआ जिसका नाम, प्रिय सुदर्शना कुमारी रक्खा गया परन्तु वैराग्य भाव में जब अत्यन्त भाव उत्कृष्टता में आ गये तब माता पिता के स्वर्ग वास हो जाने के पश्चात् ३० वर्ष की अवस्था में आप बड़े भाई "नन्दिवर्द्धन"

की अनुमति से दीक्षित हो गये दीक्षा लेते समय ही आप ने यह प्रतिज्ञा कर ली कि बारह वर्ष पर्यन्त मैं घोर से घोर कष्टों को सहन करूंगा और अपने शरीर की रक्षा भी न करूंगा इतने काल में आप को अनेक कष्टों का सामना करना पड़ा ।

जिन का कि दृश्य इस कदर भयानक है कि उसे लिखना तो दूर रहा उस के सुनने से भी हृदय कांपता है परन्तु यह आपकी ही महान् आत्मा और महान् शक्ति थी कि आप ने उसे सहन किया हम प्रिय पाठकों के लिये यहां पर उन के इस जीवन की चन्द घटनायें देते हैं जिस से कि तुम को ज्ञात होगा कि श्री भगवान् महावीर देव स्वामी किस कदर उच्च आत्मा और दृढ़ सहन शीलता होने के अतिरिक्त महान् तपस्वी थे यही कारण था कि उन्हों ने महान् से महान् तपस्या करके अपने कर्मों का नाश करते हुये केवल ज्ञान को प्राप्त किया ।

महात्मा महावीर जी त्यागी के जीवन की चन्द घटनायें ।

१—पाठको जिस समय भगवान् महावीर जी ने गृहस्थ आश्रम को त्याग कर सन्यास लेने का ध्यान

किया तो उस समय आप के बड़े भाई ने आपको आज्ञा नहीं दी और आप अपने बड़े भाई का हुक्म मानते हुये दो साल और ठहरे जब आप की अवस्था ३० साल की हो गई तो आप ने अपना राज पाट अपने बड़े भाई को सौंप दिया और अपनी तमाम धन दौलत दान करते हुये अपनी आत्मा के साधन और पर उपकार के लिये चित्त में ठानी तो यह महान् आत्मा ने इस प्रकार की वृत्ति धारण की अपने चित्त में इस बात को सोचा कि पहले इस से कि मैं किसी और कार्य में लगूं यह बेहतर मालूम होता है कि अपनी आत्मा को इस तरह साधन करूं कि वह तपस्या रूपी अग्नि से कुन्दन हो जावे इस पर विचार करते हुये उन्होंने कड़ी से कड़ी तपस्या की जो यहां तक की कि अपने जीवन के १२ वर्ष इस तपस्या रूपी मनज़िल के तै करने में आप को लगाने पड़े दो बार तो आप ने छः छः मास पर्यन्त अन्न जल नहीं किया चार चार मास तो आप ने कई बार किये एक बार जब कि आप ध्यान में खड़े थे तो आप को एक संगम नाम वाला अभव्य देव मिल गया उस ने ६ मास पर्यन्त आप को भयङ्कर से भयङ्कर कष्ट दिये किंतु

आप का मन ऐसा शान्त मय था कि उस पर रोम मात्र भी क्रोध नहीं किया बल्कि यह विचारा कि यह मेरे ही कर्मों का फल है जो कुछ भी यह कर रहा है करे मुझे इस से चलायमान नहीं होना चाहिये इसका काम मुझे गिराना है और मेरा कर्तव्य अपने ध्यान में लगे रहना है ऐसा ख्याल करते हुये अडिग अपने ध्यान में ही रहे जब आप के मन मेरू को वह किसी प्रकार भी हिला नही सका तो उदास सा होकर जाने लगा, इतने में भगवान् का ध्यान पूर्ण हो गया पश्चात् आप ने उस देव से कहा कि हे देव तुम हराश क्यों हो हराश तो मैं हूं जो यह देख कर कि तू मेरे पास आया और केवल खाली ही नहीं वल्कि बोझ रूप हो कर जा रहा है देव ने इन शब्दों को सुना और सुन कर कहा कि भगवन् यह कैसे भगवन् ने कहा कि देव सुन जो मेरे पास आता है वह धर्म रूप उपदेश को सुन कर लाभ उठा लेता है जिस से वह सद्गति का अधिकारी बन जाता है परन्तु तू ने मेरे पास छै मास पर्यन्त रह कर महान् अशुभ कर्मों का बन्धन किया जिसका फल तुझे चिरकाल तक दुःख भोगना होगा इस प्रकार आप उस देव के हित चिंतन

करते हुये आप के दया भाव से नेत्र आर्द्र हो गये।

२—श्री महावीर भगवान् ने जो तपस्या धारण कर रक्खी थी उस का समय अभी पूरा न होने के कारण आप अपने कर्मों के क्षय करने के वास्ते अनार्य भूमि में चले गये वहां पर भी अनार्य लोगों ने आप को असीम कष्ट दिये जिन के सुनने से रोमांच खड़े हो जाते हैं क समय जब कि आप पर्वत पर ध्यानावस्था में बैठे ये थे उन लोगों ने आप को पहाड़ से नीचे गेर दिया रन्तु आप अपने ध्यान से विचलित नहीं हुए।

जब कभी आप भिक्षा के लिये ग्राम में जाते तो कुत्ते आप के पीछे लोग लगाते थे। केश लुंचन किए मुष्टि आदि से प्रहार किए परन्तु आप का मन ऐसा दृढ़ था जो कि देवों से भी चलायमान नहीं हो सकता था इस प्रकार के कष्ट होने पर भी आप ने उन लोगों पर मन से भी द्वेष नहीं किया सदैव काल यही विचार करते रहते थे कि जैसे प्राणी कर्म करते हैं उन्हीं के अनुसार फल भोगते हैं अतः जैसे मैंने कर्म किये हैं वैसे ही मैंने

फल भोगना है यदि अब मैंने द्वेष किया तो आगे के लिये और नये कर्मों का बंध हो जायगा।

अतएव ! अब मुझे शान्ति से ही इन के फल को भोगना चाहिये इस प्रकार तप करते हुये और नाना प्रकार के कष्टों को सहन करते हुये भी आप अपने आत्म ध्यान में ही लगे रहे।

इस प्रकार महान् तप करते हुये नाना प्रकार के कष्टों को सहन कर आप विहार करते हुये जृंभि नामक नगर के बाहर ऋजू पालिका नदी के उत्तर कूल पर श्यामाक नामक गृह पति के कर्षण के समीपस्थ अव्यक्त चैत्य (उद्यान) की ईशान कूण में शाल वृक्ष के समीप विराजमान हो गये तब आप को वैसाख शुक्ला दशवीं के दिन विजय नामक महूर्त में हस्तोत्तरा नक्षत्र के योग के पिछल पहर में दो उपवास के साथ शुक्ल ध्यान में प्रवेश किये हुओं को केवल ज्ञान और केवल दर्शन की प्राप्ति हो गई।

जब आप को केवल ज्ञान प्राप्त हो चुका तब आपने विचार किया कि अब मुझे संसार में वह धर्म जिस का

कि मैंने अपने ज्ञान में अनुभव किया है जिस का कि फल निर्वाण (याने सच्चा सुख) हासिल करना है उस को इस संसार के दुःखों से पीड़ित हुये हुये प्राणियों को भी अनुभव करवा देना चाहिये इस उद्देश को सामने रखते हुये आप अनु क्रम से विहार करते हुये सब से पहले आपापा पुरी (पावापुरी) में पधारे।

(भगवान् का उपदेश)

जब भगवान् महावीर स्वामी जी, केवल ज्ञान को प्राप्त कर पावा पुरी में पधारे तो पहला उपदेश भगवान् का यहां पर हुआ चौसठ इन्द्रों ने समव सरण को रचा आपने वहां सिंहासन पर विराजमान हो कर सार्वजनिक हितैषी धर्म उपदेश किया जिस को सुन कर प्रत्येक जन हर्ष प्रगट करता था इसी समय उसी नगरी में सोमल ब्राह्मण ने एक यज्ञ रचा हुआ था जिस में उस समय के बड़े २ विद्वान् ब्राह्मण इन्द्र भूति, अग्नि भूति, वायु भूति, व्यक्त सुधर्मा मंडी पुत्र, मौर्य पुत्र, अकंपित अचल भ्राता मैतार्य प्रभास यह ११ विद्वान् अपनी २ शिष्य

मंडली के साथ उस यज्ञ में आये हुये थे जब उन्होंने श्री भगवान् महावीर स्वामी के धर्म उपदेश की महिमा को आप्त लोगों के मुख से श्रवण किया तब वह उस को सहन न कर सके और आपस में विचार करने लगे कि हमें महावीर स्वामी के साथ शास्त्रार्थ करके उन के धर्म को और उन की कीर्ति को उज्वल न होने देना चाहिये जिससे कि हमारे ब्राह्मण धर्म को हानि न हो ऐसा सोच कर वह महावीर स्वामी के पास गये और धर्म सम्बन्धी उन्होंने प्रश्नोत्तर किये जब भगवान् ने अपने केवल ज्ञान के बल से उन के मनों को जानते हुये उन के प्रश्नों के उत्तर दिये तो वह सत्य रूप उत्तर को पाकर वहीं समवसरण (व्याख्यान मंडप) में ही दीक्षित हो गये श्री भगवान् ने एक ही दिन में चौंतालीस सौ को दीक्षित किया इन में सब से बड़े इन्द्र भूति जी महाराज थे जिन का गौतम गोत्र था इस लिये यह गौतम स्वामी के नाम से सुप्रसिद्ध हैं यही ११ श्री भगवान् के मुख्य शिष्य थे इन्होंने चौदह पूर्व रचे जैन धर्म का स्थान २ पर प्रचार किया लाखों लोगों को सत्पथ में आरूढ़ किया और स्थान २ पर शास्त्रार्थ करके जैन धर्म का झंडा फहराया

और श्री भगवान् ने अनेक राजों और राज कुमारों को दीक्षित किया अपने सद्‌ उपदेश से चौदह हजार साधु ३६ हजार आर्यायें बनाईं लाखों श्रावक बनाये और महाराजा 'श्रेणिक' 'कुणिक' चेटक, जिनशत्रु, उदायन, इत्यादि महाराजों की आप पर असीम भक्ति थी एक समय की बात है आप विचरते हुये चंपा नगरी के बाहिर पूर्ण भद्र उद्यान (बाग़) में पधार गये तब महाराजा कुणिक बड़े समारोह के साथ आप के दर्शनों को आये और उनके साथ सहस्रों नर नारियें थीं उस समय आप ने "अर्द्ध मागधी" भाषा में सार्व जन उपदेश किया जिसका सारांश यह था कि हे आर्यो मैं जीव को मानता हूं और अजीव को भी मानता हूं इसी प्रकार पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा, बंध, और मोक्ष को भी मानता हूं और प्रवाह से संसार अनादि है पर्याय से आदि है सो इस संसार से छूटने का मार्ग केवल सम्यग् दर्शन, सम्यग् ज्ञान, और सम्यग् चारित्र ही है अतः इन्हीं के द्वारा जीव मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

हे आर्यो! शुभ कर्मों के शुभ ही फल होते हैं। और

अशुभ कर्मों के अशुभ ही फल होते हैं, जिस प्रकार प्राणी कर्म करते हैं प्रायः कर्मों के फल भी उसी प्रकार भोगते हैं।

हे भव्य जीवों! तुम कभी भी धर्म कार्यों में आलस्य मत करो। यह समय पुनः पुनः मिलना अति कठिन है- आर्य देश, आर्य कुल, उत्तम संहनन, शरीर निरोग, पांचों इन्द्रिय पूर्ण, सुगुरों की संगति, इत्यादि जो आप लोगों को सामग्री प्राप्त हो रही है इस से धर्म का लाभ लो। और राज धर्म यही है कि—किसी से भी अन्याय से वर्ताव न किया जाये, प्रजा पर न्याय पूर्वक अनुकंपा करना यही राजों का मुख्य धर्म है परन्तु प्रजा पर तब ही न्याय से वर्ताव हो सकता है जब राजे लोग अपने स्वार्थ, और व्यसनों को छोड़ देवें।

हे देवानुप्रियो! मनुष्य जन्म, शास्त्र श्रवण, धर्म पर दृढ़ विश्वास—और शास्त्रानुसार आचरण, जब यह चारों अङ्क जीव को प्राप्त हो जायें। तब ही जीव मोक्ष प्राप्ति कर सकता है। इस प्रकार के पवित्र उपदेश को सुन कर सभा अत्यन्त प्रसन्न हुई फिर यथा शक्ति नियमादि लोगों ने धारण किये। राजा बड़ा हर्षित होता हुआ भगवान् को वंदना करके अपने राज भवनों में चला गया।

भगवान् महावीर स्वामी और अहिंसा का प्रचार।

जिस समय भगवान् महावीर व स्वामी का सत्य-मयी और संसार में शान्ति लाने वाला सच्चा अहिंसक धर्म फैलने लगा तब उस समय के ब्राह्मण लोग जो हिंसा में ही धर्म मानते थे जिन के यहां यज्ञ करना ही केवल महान् धर्म सब के लिये बताया गया था और उन यज्ञों में घोर हिंसा यानी पशु वध जो होता था वह धर्मानुकूल समझा जाता था और देश में उस समय जिधर भी देखो यज्ञों ही यज्ञों का ज़ोर होने से हिंसा ही हिंसा की इतनी प्रबलता थी कि मानो खून की नदियां बह रही थीं इस अवस्था को देख कर भगवान् महावीर स्वामी का हृदय कांप उठा और उन्हों ने इस का विरोध अति ज़ोर शोर से करना प्रारंभ किया और उन राजाओं ने भी जिनको कि आपने धर्म उपदेश सुना कर अपने अनुयायी कर लिये थे उन्होंने भी अहिंसा प्रचार बहुत ही किया किन्तु आपने उन यज्ञों में होम होते हुये लाखों पशुओं को बचाया जिस का फल यह हुआ कि

इस संसार से ब्राह्मण धर्म के वह हिंसामयी यज्ञ उठ गये और अहिंसा धर्म का महान् प्रचार किया जब इस प्रकार अहिंसा धर्म का ज़ोर बढ़ने लगा और महावीर स्वामी की जय जय कार होने लगी तो फिर ब्राह्मणों ने जैन धर्म से और भी द्वेष करना प्रारम्भ कर दिया यही कारण था कि जैन धर्म वालों का नास्तिक वेद् निंदक आदि तरह २ के दोष लगाये मगर उनके ऐसा करने पर भी जैन धर्म की गूंज पहले की भांति और भी ज्यादा होती गई ।

जब भगवान् महावीर स्वामी ने उन हिंसक यज्ञों को देश से हटा देने में सफलता प्राप्त कर ली तब उन्हों ने उस समय जो गौतम बुद्ध ने अफल वाद का मत खड़ा किया था और गौशाला ने होनहार के सिद्धान्त को ही सर्वोत्कृष्ट बतलाया था न्याय पूर्वक युक्तियों से युक्त दोनों मतों का खण्डन भी किया ।

एक समय की वार्ता है कि—श्रीभगवान् वर्द्धमान स्वामीजी से विनयपूर्वक रोहा नामक आपके सुयोग्य

शिष्य निम्नप्रकार से प्रश्न पूछने लगे और आपने उनके संशय दूर किये—जैसे कि।

प्रश्न—हे भगवन् ! प्रथम लोक है किम्वा अलोक है ?

उत्तर—हे रोह ! यह दोनों पदार्थ अनादि हैं क्योंकि—यह दोनों किसी के बनाये हुए नहीं हैं यदि इन का कोई निर्माता माना जाये तब यह पूर्व वा पश्चात् सिद्ध होसकते हैं सो जब निर्माता का अभाव है तब इनका अनादित्व स्वतः ही सिद्ध है अनादि होनेसे इनको प्रथम वा अप्रथम नहीं कह सकते हैं।

प्रश्न—प्रथम जीव है वा अजीव है ?

उत्तर—हे भद्र ! जीव और अजीव दोनों अनादि हैं क्योंकि जब इनकी उत्पत्ति मानी जाए तब कार्यरूप जीव का नाश अवश्य ही होगा जब नाश सिद्ध होगया तब नास्तिक वाद का प्रसंग आजाएगा फिर पुण्य पाप बंध मोक्षादि आकाश के पुष्पवत् सिद्ध होंगे तथा दोनों का कारण क्या है ? इस प्रकार की शंका होनेपर संकर वा अनवस्था दोष की भी प्राप्ति सिद्ध होगी इसलिये ! यह दोनों वस्तुएँ स्वतः सिद्ध होने से अनादि हैं।

प्रश्न–हे भगवन् ! प्रथम भव्य जीव (मोक्ष जाने वाले) हैं वा अभव्य जीव (मोक्ष न जाने वाले) हैं ।

उत्तर–हे रोह ! मोक्ष गमन योग्य वा अयोग्य यह भी दोनों प्रकार के जीव अनादि हैं ।

प्रश्न–हे भगवन् ! प्रथम मोक्ष है किम्वा संसार है ।

उत्तर–हे रोह ! दोनों ही अनादि हैं ।

प्रश्न–हे भगवन् ! प्रथम सिद्ध (अजर अमर) है वा संसार है ।

उत्तर–हे रोह ! संसार आत्मा वा मोक्ष आत्मा यह दोनों अनादि हैं इनको प्रथम वा अप्रथम नहीं कहा जासकता–क्योंकि–आदि नहीं है इसलिये मोक्ष आत्मा और संसार आत्मा यह दोनों अनादि हैं (सिद्ध आत्माओं का ही नाम ईश्वर है)

प्रश्न–हे भगवन् ! प्रथम अंडा और पीछे कुकड़ी है वा प्रथम कुकड़ी पीछे अंडा है ।

उत्तर–हे रोह ! अंडा कहां से उत्पन्न होता है हे भगवन् ! कुकड़ी से, फिर कुकड़ी कहां से उत्पन्न होती है, हे भगवन् ! अंडा से । हे रोह ! जब इस प्रकार से दोनों

का सम्बन्ध है तब सिद्ध हुआ कि–यह दोनों प्रवाह से अनादि हैं प्रथम कौन है इस प्रकार नहीं कह सकते।

इस प्रकार रोह अनगार ने अनेक प्रश्नों को पूछा श्रीभगवान् ने उनके सर्व संशयों को दूर किया।

एक समय श्री गौतम स्वामी ने श्रीभगवान् से प्रश्न किया कि–हे भगवन्! गर्भावास में जीव इन्द्रिय लेकर आता है वा इन्द्रिय छोड़ कर गर्भावास में जीव प्रविष्ट होता है तब श्रीभगवान् ने प्रतिउत्तर में प्रतिपादन किया कि–हे गौतम! इन्द्रियों को लेकर भी आता है छोड़ कर भी आता है तब श्री गौतम प्रभुजी ने फिर शंका की कि–हे भगवन्! यह कथन किस प्रकार से है तब श्रीभगवान् ने फिर उत्तर दिया कि–हे गौतम द्रव्य इन्द्रियों को जीव छोड़ कर आता है और भावेन्द्रियों को (सत्तारूप) को जीव लेकर आता है जिसके द्वारा फिर द्रव्य इन्द्रियों की निष्पत्ति होजाती है गौतम स्वामी ने फिर प्रश्न किया कि–हे भगवन्! जीव शरीर को छोड़ कर गर्भावास में आता है वा शरीर को लेकर गर्भावास में आता है।

तब श्रीभगवान् ने उत्तर में प्रतिपादन किया कि-हे गौतम ! आत्मा शरीर को छोड़कर भी आता है और लेकर भी आता है जैसे कि औदारिक शरीर, वैक्रिय शरीर, आहारिक शरीर, इन तीनों शरीरों को छोड़कर तैजस, और कार्मण्य शरीरों को लेकर जीव गर्भावास में प्रवेश करता है क्योंकि-कर्मों के भार से जीव इस प्रकार से भारी होरहे हैं जैसे कि-ऋणी पुरुष, ऋण के भार से भारी होता है यद्यपि ऋणी के सिरपर प्रत्यक्ष में कोई भी भार नहीं दीखता तथापि उसकी आत्मा भार से युक्त होती है उसी प्रकार जीव को कर्मों का भार है।

इस प्रकार जीव को कर्मों का भार है।

इस प्रकार से श्रीभगवान् ने ३४ अतिशययुक्त और ३५ वाणी से विभूषित देश २ में धर्मोद्घोषणा करते हुए अनेक जीवों के संशयों का उच्छेदन किया।

और सर्व प्रकार से अहिंसा धर्म का देश में प्रचार किया लाखों हवन कुंड में जो पशुओं का बध होरहा था उसका निषेध किया, करोड़ों पशुओं को अभयदान

मिलगया, क्योंकि–जो लोग दया से पराङ्मुख होरहे थे, उनको दया धर्म में स्थापना करदिया।

साथ ही आपके प्रति वचनों में न्याय धर्म ऐसे टपकता था जैसे कि–अमृत की वर्षा में कल्पवृक्ष प्रफुल्लित होजाता है।

एक समय की बात है कि–आप देश में दया धर्म का प्रचार करते हुए–कौशाम्बी नगरी के बाहिर एक बाग में विराजमान होगए–तब वहाँ पर "उदायन" नामी राजा भी व्याख्यान सुनने को आगया और राणी आदि अन्तःपुर भी वहां पहुंच गया, व्याख्यान होने के पश्चात् एक जयन्ती राजकुमारी ने आप से निम्नलिखित प्रश्न किये, और आपने न्यायपूर्वक उनका निम्नलिखितानुसार उत्तर प्रदान किए। जैसे कि—

जयन्ती–हे भगवन्! भव्य आत्मा स्वभाव से है वा विभाव से।

भगवन्–हे जयन्ती! स्वभाव से है विभाव से नहीं है।

जयन्ती–हे भगवन्! यदि भव्य आत्मा स्वभाव से है तो क्या सर्व भव्य आत्मा मोक्ष हो जायेंगे।

भगवन्—हे श्राविके ! सर्व भव्य आत्मा मोक्ष प्राप्त नहीं करेंगे क्योंकि—वह अनन्त हैं जैसे आकाश की श्रेणिएँ अनन्त हैं उसी प्रकार जीव भी अनन्त हैं जिस प्रकार उन श्रेणियों का अन्त नहीं आता उसी प्रकार जीवों का अन्त भी नहीं है

जयन्ती—हे भगवन् ! अनन्त शब्द का अर्थ क्या है।

भगवन्—हे जयन्ती ! जिसका अन्त न हो उसे ही अनन्त कहते हैं जब उसका अन्त है तब वह अनन्त नहीं कहा जा सकता। अतएव ! हे जयन्ती ! अनादि संसार में अनादि काल से अनन्त आत्मा निवास करते हैं अनन्त ही होने से उन का अन्त नहीं पाया जाता।

जयन्ती—हे भगवन् ! जीव बलवान् अच्छे होते हैं वा निर्बल अच्छे होते हैं।

भगवन् हे जयन्ती ! बहुत से आत्मा बलवान् अच्छे होते हैं बहुत से निर्बल अच्छे होते हैं।

जयन्ती—हे भगवन् ! यह कथन किस प्रकार से माना जाए कि-बहुत से आत्मा बलवान् अच्छे होते हैं और बहुत से निर्बल—

भगवान्–हे जयन्ती ! न्याय पक्षी, धर्मात्मा, धर्म से जीवन व्यतीत करने वाले, धर्म–के उपदेशक वा सत्यपथ के उपदेशक इस प्रकार के आत्मा बलवान् अच्छे होते हैं क्योंकि–धर्मात्माओं के बल से अन्याय नहीं होने पाता, जीवों की हिंसा नहीं होती पाप कर्म घट जाता है लोग न्याय पक्ष में वा धर्म पक्ष में आरूढ़ हो जाते हैं अतएव ! धर्मात्मा जन तो बलवान् ही अच्छे होते हैं। किन्तु जो पापात्मा हैं वे निर्बल ही अच्छे होते हैं क्योंकि–जब पापियों का बल निर्बल होगा तब श्रेष्ट कर्म बढ़ जायेंगे किन्तु जब पापी बल पकड़ेंगे तब अन्याय बढ़ जाएगा। पाप बढ़ जाएगा। हिंसा, झूठ, चोरी–मैथुन, और परिग्रह, यह पांचों ही आश्रव बढ़ जाएँगे, अतएव ! पापियों का निर्बल ही होना अच्छा है।

जयंती–हे भगवन् ! जीव सोए हुए अच्छे होते हैं वा जागते हुए !

भगवान् ! हे जयंती ! बहुत से आत्मा सोए हुए अच्छे हैं और बहुत से जागते हुए अच्छे हैं।

जयंती ! हे भगवन् ! यह वार्ता किस प्रकार मानी जाए कि—बहुत से आत्मा सोए हुए अच्छे हैं और बहुत से जागते हुए अच्छे हैं।

भगवान् ! हे जयन्ति ! सत्यवादी, न्याय करनेवाले, सर्व जीवों के हितैषी सम्यज्ञ, सर्व जीवों को अपने समान जानने वाले इत्यादि गुण वाले जीव जागते अच्छे होते हैं। पाप कर्मों के करने वाले, सर्व जीवों से वैर करने वाले असत्यवादी, अधर्म से जीवन व्यतीत करने वाले इत्यादि अवगुण वाले जीव सोए पड़े ही अच्छे हैं क्योंकि उनके सोने से बहुतसी आत्माओं को शान्ति रहती है।

इस प्रकार अनेक प्रकार के प्रश्नों के यथेष्ट उत्तर पाकर जयंती राजकुमारी दीक्षित होकर श्रीमती चन्दन वाला आर्या के पास रहकर मोक्ष प्राप्त होगई।

श्रीभगवान् ने अपने पवित्र चरणकमलों से इस भरातल को पवित्र किया और अनेक आत्माओं को संसार चक्र से पार किया।

इस प्रकार श्रीभगवान् परोपकार करते हुए अन्तिम चतुर्मास श्रीभगवान् ने अपापापुरी (पावापुर) नगरी

के हस्तीपाल राजा की शुक्रशाला में किया इस चतुर्मास में बहुत विषयों पर उपदेश किये। कार्तिक कृष्ण १५ पंचदशी की रात्रि में १५५ अध्याय कर्मविपाक के और ३६ अध्याय उत्तराध्ययन सूत्र के वर्णन करके श्रीभगवान् निर्वाण होगए।

उसी समय १८ देशों के राजे श्रीभगवान् के पास पौषध करके बैठे हुए थे जब उन्होंने श्रीभगवान् निर्वाण हुए जानलिए। तब उन्होंने रत्नों का द्रव्य उद्योत किया तब ही श्रीभगवान् महावीर स्वामी की स्मृति में "दीप-माला" पर्व स्थापन किया गया जो आज पर्यन्त अव्य-वहिच्छिन्नता से चला आता है। श्रीभगवान् ७२ वर्ष पर्यन्त इस धरातल को सुशोभित करते रहे। उनका इन्द्रों वा मनुष्यों ने मृत्यु संस्कार बड़े समारोह के साथ अग्नि द्वारा किया सो हरएक भव्य आत्माओं को योग्य है कि—श्रीभगवान् की शिक्षाओं से अपने जीवन को पवित्र बनाएँ और सबके हितैषी बनें क्योंकि—शास्त्रों में श्रीभगवान् सब जीवों के हित के लिए निम्नलिखित आठ शिक्षाएँ करगए हैं। जैसे कि—

१ जिस शास्त्र को श्रवण नहीं किया उसको श्रवण करना चाहिए।

२ सुने हुए ज्ञान को विस्मृत न करना चाहिए।

३ संयम के द्वारा प्राचीन कर्म क्षय करदेने चाहिएं।

४ नूतन कर्मों का सम्वर करना चाहिए।

५ जिसका कोई न रहा हो उसको रक्षा करनी चाहिये—(अनाथों का पालना)

६ नव शिष्यों का शिक्षाओं द्वारा शिक्षित करदेना चाहिये।

७ रोगियों की घृणा छोड़ के सेवा करनी चाहिये।

८ यदि परस्पर कलह उत्पन्न होगया हो तो उस कलह को माध्यस्थ भाव अवलम्बन करके और निष्पक्ष होकर मिटादेना चाहिये क्योंकि—कलह में अनेक गुणों की हानी होती है। यथा—प्रेम—वृद्धि, यह सब कलह से चलेजाते हैं। इन शिक्षाओं द्वारा अपना जीवन पवित्र करना चाहिए।

बारहवाँ पाठ ।

(श्राविका विषय)

प्रिय सुज्ञ पुरुषो ! जैसे जैनमत में श्रावक को धर्माधिकारी बतलाया है वा श्रावक को चारों तीर्थों में एक तीर्थ माना गया है तथा जैसे द्रव्य तीर्थ के स्नान से शारीरिक मल दूर होजाता है उसी प्रकार श्रावक वा श्राविका रूप तीर्थ के संग करने से जीव पापों से छूट जाते हैं ।

जब श्रावक बारह व्रतों का धारी होता है फिर उस की धर्मपत्नी भी बारह व्रत ही धारण करले तब धर्म की साम्यता होने पर उनके दिन आनन्द पूर्वक व्यतीत होते हैं ।

श्रावक और श्राविकाओं को अन्य द्रव्य तीर्थों की यात्रा करने की आवश्यकता नहीं है किन्तु उनसे बड़े जो और दो तीर्थ हैं वे आनन्द पूर्वक उनकी यात्रा कर सकते हैं जैसे कि—साधु और साध्वी—इनके दर्शनों से

धर्म की प्राप्ति होसकती है अर्थों का निर्णय होजाता है और ज्ञान से विज्ञान बढ़जाता है जब विज्ञान होगया तब संयम होता है संयम का फल यही है कि–आश्रव से रहित होजाना, जब आश्रव से रहित होगया तब उसका परिणाम मोक्ष होता है।

मित्रो ! श्राविकाओं को जैन सूत्रों ने धर्म विषय वही अधिकार दिये हैं जो श्राविकों को दिये गये हैं। अतएव सिद्ध हुआ कि–श्रावक और श्राविका का धर्म एक ही होना चाहिये।

धर्म की समरूपता होने पर हर एक कार्य में फिर शान्ति रह सकती है जब धर्म में विषमता होती है तब प्रायः हर एक कार्य में विषमता हो जाती है।

सो श्राविकाओं को योग्य है कि–घर सम्बन्धि काम काज करती हुई यत्न को न छोड़े–जैसे स्त्रियों की सूत्रों में ६४ कलाएं वर्णन की गई हैं उनमें यह भी कला बतलाई गई है कि–जो घर के काम हों उनको भी स्त्री यत्न बिना न करे।

जैसे–चुल्हा, चौका, चक्की, इत्यादि कार्यों में यत्न बिना काम न करना चाहिये। क्योंकि–चुल्लादि की

क्रिया करते समय यदि विवेक न किया जाएगा तब अनेक जीवों की हिंसा होने की संभावना की जाती है तथा चक्की की क्रिया में भी सावधान रहने की अत्यन्त आवश्यकता है यदि विना यत्न काम किया जायेगा तब हिंसा होने की संभावना हो जाती है और साथ ही अपनी रक्षा भी नहीं हो सकती क्योंकि—यदि विना यत्न से काम करते हुए कोई विष वाला जीव चक्की द्वारा पीसा गया तब उस के परमाणुओं से रोग उत्पन्न हो जाते हैं जिस से वैद्यों वा डाक्टरों के मुंह देखने पड़ते हैं तथा इस समय जो अधिक रोग उत्पन्न हो रहे हैं उसका मूल कारण यही प्रतीत होता है कि—खान, पान, में विवेक नहीं रहा है इसी वास्ते मशीन द्वारा चुन्न पीसा हुआ विवेकी पुरुषों को त्याज्य है क्योंकि—मशीनों में प्रायः यत्न नहीं रह सकता फिर अनर्थ दण्ड का भी पाप अतीव लगता है जो घरों में अपनी चक्की द्वारा काम किया जाता है उस में अनर्थ दण्ड का पाप तो टल ही जाता है परन्तु यत्न भी हो सकता है और वह अन्न भी स्वच्छ होता है तथा स्वच्छता के कारण से रोगों से भी निवृत्ति हो जाती है।

और धर्म में भी भाव बने रहते हैं इसलिए। स्त्रियों को योग्य है कि—घर के काम बिना यत्न न करें।

जिन घरों में यत्न से काम नहीं किया जाता और प्रमाद बहुत ही छाया हुआ रहता है उन घरों की लक्ष्मी की वृद्धि नहीं हो सकती इस लिए। श्राविकाओं को योग्य है कि—घर के काम विना यत्न कभी न करें तथा चुल्हे सम्बन्धि काम जैसे विना देखे लकड़ियें न जलायें, जो गोमय (पाथियां वा थापियां) भी जलाना पड़ता है उन्हें भी विना देखे चुल्ले में न दें, क्योंकि गोमय में बहुत से सूक्ष्म जीव उत्पन्न हो जाते हैं वा गीले ईंधन में बहुत से जीव होते हैं इस लिये इन कार्यों में विशेष यत्न की आवश्यकता है।

और भोजन-शाला की छत्त पर भी वस्त्राच्छादन की अत्यावश्यकता होती है क्योंकि—धूम के छत्त पर लग जाने से बहुत से जीव उत्पन्न होजाते हैं वा मसी (मषी) छत्त पर लगी हुई होती है जब वह भोजनादि क्रियाएं करते समय नीचे गिर जाती है तो फिर रोग के उत्पन्न करने हारी वा भोजन को बिगाड़ने वाली होती है अत-

एव ! सिद्ध हुआ कि-भोजन शाला (मंडप) में अत्यन्त यत्न की आवश्यकता है।

तथा चारपाई वा वस्त्रादि भी विना यत्न से न रखने चाहिये, विना यत्न से इन में भी जीवोत्पत्ति हो जाती है और जो खांड आदि पदार्थ घरों में होते हैं वा घृत तैलादि होते हैं उन के वर्त्तन को विना आच्छादन किये न रखने चाहिये अपितु सावधानी से इन कार्यों के करने से जीव रक्षा हो सकती है और घर के सामान्न को ठीक रखते हुये, स्वभाव कटु कभी न होना चाहिये-स्वभाव सुन्दर होने से ही हर एक कार्य ठीक रह सकता है-सन्तान रक्षा, पशु सेवा, स्वामी आज्ञा पालन, इत्यादि कार्य श्राविकाओं को विना विवेक न करने चाहिये। कारण कि-पत्नियों का देव शास्त्रकारों ने पति ही बतलाया है जो-स्त्री अपने प्रिय पति की आज्ञा पालन नहीं करती अपितु आज्ञा के अतिरिक्त पति का सामना करती है और असभ्य वर्ताव करती है वह पतिव्रत धर्म से गिरी हुई होती है।

और मर कर भी सुगति में नहीं जाती किन्तु श्राविकाओं

को उक्त वर्ताव न करना चाहिये, धर्म में सहायक परस्पर प्रेम, मित्र के समान वर्ताव सुख दुःख में सहन शीलता सस्रू, जेठानी, आदि से प्रीतिभाव, और अपने परिवार को धर्म में लगाना, नित्य क्रियाओं में लगा रहना श्री वीत-राग प्रभु के धर्म का पालन करना यही श्राविकाओं का मुख्य कर्तव्य है, बच्चों को पहले ही धर्म शिक्षाओं से अलंकृत करना और उन को गाली आदि के देने से रोकना इत्यादि क्रियाओं के करने में जब स्त्री की कुशलता बढ़ जाती है तब स्त्री अपने मन पर भी विजय पा सकती है।

किन्तु जिस की क्रियाएं अनुचित होती हैं वह स्त्री अपने मन पर विजय नहीं पा सकती किन्तु व्यभिचार में प्रवृत्ति करने लग जाती हैं अतएव। सिद्ध हुआ, कि-हर्ष पूर्वक धर्म पथ में अपने प्राण प्यारे पति के साथ समय व्यतीत करना चाहिये। जिस ने पति सेवा को ही छोड़ दिया उस ने अपने धर्म कर्म को भी तिलाञ्जली दे दी, किन्तु पति को भी चाहिये, कि अपनी धर्म पत्नी को दुष्ट मार्ग में प्रवृत्त न करे और विषया नन्दिनी उस

को न बनावे किन्तु आप श्रावक धर्म में प्रवृत्ति करता हुआ उस को सुशिक्षा से अलंकृत करे।

और परस्पर प्रेम सम्बन्धि वार्त्तालाप में धर्म चर्चा भी करते रहें सदैव काल प्रसन्न मुख से परस्पर निरीक्षण करें क्यों कि—जिस घर में सदैव कलह ही रहता है उस घर की लक्ष्मी चली जाती है,

इस लिए ! धर्म पूर्वक प्रेम पालन के लिए जो कुल स्त्री की न्याय पूर्वक मांग होती है यदि उसको पालन (पूर्ण) न किया जाए तब अनुचित वर्तावे होने की शंका की जाती है सो उसकी मांग पूरी करने से उसका चित्त अनुचित्त वर्ताव से दूर करना ही है परन्तु स्त्रियों को भी उचित है कि—अपने घर की व्यवस्था ठीक देख कर पदार्थों की याञ्चा करनी चाहिए।

वह भी एक सकोमल और मृदु वाक्यों से करनी चाहिए।

क्योंकि—कठिन वाक्यों के परस्पर प्रयोग करने से प्रेम टूट जाता है असभ्य वर्ताव बढ़ जाता है॥

साथ ही अपनी भावी होनहार संतान के सन्मुख कोई भी अनुचित वर्ताव न होना चाहिए क्यों कि–जब बच्चे अपने मां और बाप के अनुचित वर्ताव को देखते हैं तब उनके मन से अपने मां और बाप का पूज्य भाव हट जाता है फिर वह उनके साथ अनुचित वर्ताव करनें लग जाते हैं इतना ही नहीं किन्तु कुसंग में पड़ जाते हैं अपने मां और बाप की शिक्षा को भी परवाह नहीं रखते जिसका कि परिणाम आगे के लिए सुखप्रद नहीं रहता ,,

अत एव ! सिद्ध हुआ कि–परस्पर अनुचित वर्ताव कदापि न होना चाहिए,

और जो घर में स्वधर्मी भाई आ जाए तो उसके साथ सभ्यता पूर्वक वर्ताव करना चाहिए। जैसे शंख श्रावक के घर में पुष्प कली श्रावक के पधारने पर शंख श्रावक की धर्म पत्नी "उत्पला" श्राविका उनको आते हुओं को देख कर सातवा आठ पाद (पैर) उनके सामने उनके लेने वास्ते गई थी।

और उनको बन्दना नमस्कार किया फिर उनको आसन की आमंत्रणा की, जब वह शान्ति पूर्वक बैठ गए फिर उन से प्रेम पूर्वक पूछा कि—आप कैसे पधारे आप का क्या प्रयोजन है इत्यादि तब उन्हों ने उत्तर में प्रति पादन किया कि—मैं शंख जी के मिलने के वास्ते आया हूं, वह कहां पर हैं।

तब "उत्पला" ने उत्तर में कहा कि—उन्होंने आज पाक्षिक पौषध शालामें पौषध की हुई है—वह आज ब्रह्मचारी और उपवासी हैं अकेले ही बैठे हुये हैं इत्यादि,'

इस कथन से—यह स्वतः ही सिद्ध हो गया कि—श्राविकाओं का स्वधर्मियों के साथ कैसा पवित्र वर्ताव होना चाहिये।

श्राविकाएं—चारों तीर्थों में से एक तीर्थ रूप हैं इन का धार्मिक जीवन बड़े ऊंच कोटिका होना चाहिये।

साधु वा साध्वियों की संगति शास्त्रों का स्वाध्याय, पति सेवा गृह कार्यों में कुशलता—धार्मिक पुरुषों वा स्त्रियों से प्रेम अनुकंपा युक्त—ईर्ष्या—असूया, कलह,

चुगली, पर के अवगुणवाद, अभ्याख्यान (कलङ्क) इत्यादि दुर्गुणों को त्याग देना चाहिये। इस का अन्तिम परिणाम यह होगा कि—इस लोक में सुख पूर्वक जीवन व्यतीत होगा और परलोक में—सुख वा मोक्ष के सुख उपलब्ध होंगे ॥

तेरहवां पाठ।

(देव गुरु और धर्म विषय)

सुज्ञपुरुषो ! इस असार संसार में प्राणी मात्र को एक धर्म ही का सहारा है मित्र, पुत्र, सम्बन्धि इत्यादि जब मृत्यु का समय निकट आता है तब सब छोड़ कर उस से पृथक् हो जाते हैं तब प्राणी अकेला ही परलोक की यात्रा में प्रविष्ट हो जाता है।

जैसे किसी ने—किसी ग्राम में जाना हो तब वह जाने वाला अपने वहां पर ठहरने के लिये अनेक प्रकार को सोचता है उसी प्रकार हर एक प्राणी के

परलोक की यात्रा करनी है वहां पर अपने किये हुये ही कर्म काम आते हैं इस लिये । परलोक के लिये तीनों की परीक्षा अवश्य ही करनी चाहिए जैसे कि—देव, गुरु और धर्म ।

सारा संसार विश्वास पर काम कर रहा है लाखों वा करोड़ों रुपइयों का व्यापार भी विश्वास पर ही चल रहा है—कन्या दान भी विश्वास पर ही लोग करते हैं ।

इसी प्रकार जब परीक्षा द्वारा "देव" सिद्ध हो जाए तब उस पर पूर्ण विश्वास होना चाहिये ।

जैसे कि—जिस देव के पास स्त्री है वह कामी अवश्य है क्योंकि—स्त्री का पास रहना ही उस का कामीपना सिद्ध कर रहा है, तथा जिस देव के पास शस्त्र है वह भी उस का देव पना नहीं सिद्ध कर सकते क्योंकि—शस्त्र वही रखता है जिस को किसी शत्रु का भय हो तथा जिस देव के हाथ में जय माला है वह भी देव नहीं होता है, जय माला वही रखता है जिस ने किसी का जाप करना हो तथा स्मृति न रहती हो जब वह स्वयं ही देव है तब वह किस देव का जप कर रहा है तथा—स्मृति

आदि के न रहने से सर्वज्ञता का व्यवच्छेद हो जाता है और कमंडलु आदि के रखने से अपवित्रता सिद्ध होती है सिंह आदि पशुओं की सवारी करने से दयालु पना नहीं रहता इत्यादि चिन्हों द्वारा देव के लक्षण संघटित नहीं होते हैं इसी लिये उन्हें देव नहीं माना जाता।

जो गुरु धो कर कनक कामनी के त्यागी नहीं हैं अपितु विषयानन्दि होरहे हैं ज़र ज़ोरू ज़मीन के झगड़े में फंसे हुए हैं और भांग–चरस, सुल्फा, तमाखू, अफीम, गांजा, इत्यादि व्यसनों में फंसे हुए हैं फिर इन्हीं के कारण से वे जूआ—मांस–मदिरा–परस्त्री–वेश्यादि के गामी बन जाते हैं।

राज द्वार में गृहस्थों की तरह उन के भी न्याय (फैसले) होते हैं अतएव ! वे गुरु पद के योग्य नहीं हैं किन्तु उन कुगुरुओं से बहुत से सद्गृहस्थ अच्छे हैं जो व्यसनों से बचते हैं।

फिर वेह हर तरह की सवारियों में भी चढ़ जाते हैं–लोगों के आमंत्रणों को स्वीकार करते हैं भंडारे लगाते हैं–भंडारों के नाम पर हजारों रुपइये लोगों से एकट्ठे

करते हैं—सो यह कृत्य साधु वृत्ति से बाहर है इसलिये ! ऐसे पुरुष भी गुरु होने के योग्य नहीं हैं।

जिस धर्म में हिंसा की प्रधानता है और असत्य, मैथुन आदि क्रियाएं की जाती हैं देवों के नाम पर पशु वध होते हैं वह धर्म भी मानने योग्य नहीं है क्योंकि— जैसे उन के देव हैं वैसे ही उन देवों के उपासक हैं जैसे— कवि ने कहा है कि—

करभाणां विवाहेतु रासभास्तत्र गायकाः
परस्परं प्रशंसंति अहोरूप महा ध्वनिः १

अर्थ—ऊंटों के विवाह में गधे बन गये गाने वाले, फिर वह परस्पर प्रशंसा करते हैं कि—आश्चर्य है ऐसे रूप पर और वह कहते हैं आश्चर्य है ऐसे गाने वालों पर क्योंकि—जैसे वर का रूप है वैसे ही गाने वालों का मधुर स्वर है।

उसी प्रकार, जैसे हिंसक देव हैं उसी प्रकार के हिंसक उन के उपासक हैं अतएव ! सिद्ध हुआ कि—जिस धर्म में व्यभिचार ही व्यभिचार पाया जाता है वह धर्म

भी विद्वानों के उपादेय नहीं है जिज्ञासुजनों को ऐसे धर्मों से भी पृथक् रहना चाहिये।

सुज्ञ पुरुषों को चाहिये कि—देव उन को मानें जो १८ दोषों से रहित हैं, जीवन्मुक्त और सर्वज्ञ सर्वदर्शी हैं योग मुद्रा में भी देखे जाते हैं—सर्व जीवों को निर्भय करने वाले हैं प्राणी मात्र के रक्षक हैं, ३४ अतिशय और ३५ वाणी के धारक हैं जो ऊपर उन देवों के शस्त्रादि चिन्ह वर्णन किए गए हैं उन चिन्हों में से कोई भी चिन्ह उन में नहीं है ऐसे श्री अर्हन् प्रभु देव मानने चाहिये। और गुरु वही हो सकते हैं जो शास्त्रानुसार अपना जीवन व्यतीत करने वाले हैं, सत्योपदेष्टा और सर्व जीवों के हितैषी हैं, भिक्षा वृत्ति के द्वारा वह अपना जीवन व्यतीत करते हैं जैसे भ्रमर की वृत्ति होती है उसी प्रकार जिनके भोजन की वृत्ति है—हर एक प्रकार से वह त्यागी हैं कायोत्सर्ग में सदा लगे रहते हैं विवेक जिन का सहोदर है जैसे सहोदर से प्रेम होता है उसी प्रकार विवेक से जिन का प्रेम है।

पांच महाव्रत दशयति धर्म इत्यादि के जो पालने वाले हैं वही गुरु हो सकते हैं।

धर्म वही होना चाहिये—जिस में जीव दया हो। क्योंकि—जिस धर्म में जीव दया नहीं है वह धर्म ही क्या है कारण कि—जीव रक्षा ही धर्म का मुख्य अङ्ग है इसी से अन्य गुणों की प्राप्ति हो सकती है।

मित्रो! जैन धर्म का महत्व इसी बात का, है कि—इस धर्म में अहिंसा धर्म का असीम प्रचार किया। अनन्त आत्माओं के प्राण बचाये हिंसा को दूर किया।

यद्यपि—अन्यमतावलम्बी लोगों ने भी "अहिंसा परमो धर्मः" इस महा वाक्य का अति प्रचार किया किंतु वह प्रचार स्वार्थ कोटी में रह गया क्योंकि—उन लोगों ने बलि, यज्ञ, देवादि के वास्ते अहिंसा को विहीत मान लिया इसी कारण से वेह लोग इस महा वाक्य का पालन न कर सके।

तथा अपने स्वार्थ के वास्ते, वा शरीरादि रक्षा वास्ते भी उन लोगों ने हिंसा विहीत मान लिया।

तथा—एकेन्द्रियादि कार्यों में कतिपय जनों ने जीव सत्ता ही नहीं स्वीकार की जैसे—मिट्टी, पानी, अग्नि, वायु,

और वनस्पति काय में जैन शास्त्रों ने संख्यात, असंख्यात, वा अनन्त आत्मा स्वीकार किये हैं किन्तु जब उन लोगों ने उन में जीव सत्ता ही नहीं स्वीकार की तो भला फिर उन की रक्षा में वे कटिबद्ध कैसे खड़े हो जाएं।

अतएव ! जैन शास्त्रों ने एकेन्द्रियादि से लेकर पांचेन्द्रिय पर्यन्त जीवों पर अहिंसा धर्म का प्रचार किया, सो धर्म वही हो सकता है जो अहिंसा का सर्व प्रकार से पालन करता हो।

और जीव रक्षा धर्म में ही, दान, शील, तप, और भावना रूप धर्म प्रवेश हो सकते हैं अन्य नहीं।

क्योंकि—अहिंसा धर्म को मानते हुये ही दान, दिया जा सकता है तप किया जाता है, शील पालन होता है, भावना, द्वारा तीनों उक्त धर्मों की सफलता की जाती है।

जब दान, शील, तप, भी कर लिया किन्तु भावना, उस में न धारण की गई तो वे तीनों ही धर्म सफल नहीं हो सकते हैं अतएव ! भावना द्वारा कार्यों की सफलता करनी चाहिये।

सुज्ञपुरुषो-जैन धर्म ने अहिंसा धर्म का सेतु रामेश्वर से लेकर विंध्याचल पर्वत पर्यन्त तो प्रचार किया ही था, किन्तु अन्य देशों में भी अहिंसा धर्म का नाद बजाया समय की विचित्रता है कि-अब यह पवित्र धर्म का प्रचार स्वल्प होने के कारण से केवल-गुजरात (गुजर) मारवाड़, मालवा, कच्छ, पंजाब, आदि देशों में ही यह धर्म रह गया है किन्तु इस धर्म के अमूल्य सिद्धान्त विद्वानों के स्वल्प होने के कारण से छिपे पड़े हुये हैं।

विद्वान् वर्ग को योग्य है कि-सब के हितैषी भाव को अवलम्बन करके इस पवित्र जैन धर्म के अहिंसा धर्म का प्रचार करना चाहिये जिस के द्वारा अनंत आत्माओं के प्राणों की रक्षा हो जाये। परन्तु वह प्रचार तब हो सकता है जब परस्पर सम्प (प्रेम) हो-जहां प्रेम भाव रहता है वहां पर हर एक प्रकार की सम्पदा मिल जाती हैं जैसे कि—

किसी नगर में एक शेठ रहता था वे बड़ा लक्ष्मी पात्र था एक समय की बात है कि-वह रात्रि के समय सोया पड़ा था उसको लक्ष्मी देवी ने दर्शन देकर कहा कि—

शेठ जी मैंने बहुत चिरकाल पर्यन्त आपके घर में निवास किया किन्तु अब मैं जाती हूं, परन्तु आप एक सुयोग्य पुरुष हैं मेरे से कोई वर मांग लो मुझे मत मांगना क्योंकि मैं अब रहना नहीं चाहती, तब शेठ जी ने लक्ष्मी देवी से विनय पूर्वक हाथ जोड़ कर निवेदन किया कि हे मातः ! मैं कल्ह को अपने परिवार की सम्पति के अनुसार आप से वर विषय याचना करूंगा, मातः काल होते ही शेठ जी ने अपने परिवार से सम्पति ली, किन्तु उनकी सम्मतियों से शेठ जी की संतुष्टी नहीं हुई तब शेठ जी की छोटी कन्या जो पाठशाला में पढ़ती थी जब उस से पूछा तब उसने विनय पूर्वक शेठ जी के चरणों में निवेदन किया कि—पिता जी ! आप लक्ष्मी माता से सम्प (प्रेम) का वर मांगो जिस से उस के जाने के पश्चात् घरमें फूट और कलह उत्पन्न हो जायेगा, वह न हो, शेठ जी ने इस बात को स्वीकार कर लिया, फिर रात्री के समय देवी ने दर्शन दिये तो फिर शेठ जी ने वही प्रेम रूप वर मांगा तब देवी ने उत्तर में कहा कि—हे शेठ जी ! जब तुम परस्पर प्रेम रखने की याचना करते हो तो फिर मैंने कहां जाना है क्योंकि—जहां 'प्रेम'

वहां ही मैं—फिर लक्ष्मी शेठ जी के घर में स्थिर हो कर रहने लगी इस दृष्टान्त से यह सिद्ध हुआ कि—जहां प्रेम होता है वहां सब कुछ होजाता है इस लिये। देव, गुरु, और धर्म की पूर्ण प्रकार से परीक्षा करके फिर इस के प्रचार में कटि बध हो जाना चाहिये। जब अहिंसा धर्म का सर्वत्र प्रचार किया जाएगा तब सदा चार का प्रचार भी साथ ही हो जाएगा।

क्या कि—सदा चार सत् पुरुषों का जीवन है।
मोक्ष के अक्षय सुख के देने वाला है।

चौदहवाँ पाठ।

(श्रीपूज्य अमरसिंह जी महाराज का जीवन चरित्)

प्रिय सुज्ञपुरुषो! एक महर्षि की जीवनी से अनेक आत्माओं को लाभ पहुंचता है फिर जनता उसीका अनुकरण करने लगजाती है।

लोगों को जीवनी एक स्वर्गीय सोपान के समान बनजाती है परन्तु जीवनी किसी अर्थ को अवश्य रखती हो—

यदि जीवनी सच्चरित्रमयी होवेगी तब वह फिर जगत् में पूजनीय बनजाएगी क्योंकि—जीवनी के पढ़ने से पाठकों को तीन पदार्थों का ज्ञान होता है, उस समय संसार की क्या गति थी लोक अपना जीवन निर्वाह किस प्रकार करते थे, उस महर्षि ने किस उद्देश के लिए अनेक कष्टों का सामना किया इतनाही नहीं किन्तु उन कष्टों को शान्ति पूर्वक सहन किया, अन्त में किस प्रकार वह सफल मनोरथ हुये।

आज आप एक ऐसे महर्षि के पवित्र जीवन का अवलोकन करेंगे कि—जिन्होंने पंजाब देश में किस प्रकार से जैन धर्मोद्योत किया और अपना अमूल्य जीवन संघ सेवा में ही लगा दिया।

वह आचार्य श्री पूज्य अमर सिंह जी महाराज हैं।

आप का जन्म पंजाब देश के सुप्रसिद्ध अमृतसर

आप के पिता जी जवाहरात की दुकान करते थे, इस समय पंजाब देश में महाराजा "रणजीत सिंह" जी के राज्य तेज से बहुतसी जातियों में सिंह नाम की प्रथा चली हुई थी। आप बाल्यावस्था के अति क्रम हो जाने पर अति निपुण हो गये विद्या में भी अति प्रवीण हुये। नामक शहर में १८६२ वैशाख कृष्णा द्वितीया के दिन लाला बुद्ध सिंह ओसवाल (भावड़े) तत्तड़ गोत्री की धर्म पत्नी श्री मती कर्मों देवी की कुक्षि से हुआ था।

लाला मोहर सिंह, और लाला मेहर चन्द्र, यह दोनों आप के बड़े भाई थे आप का परस्पर प्रेम भाव उन्हों के साथ अधिक था, जब आप यौवनावस्था में आये तब आपको पूर्व कर्मों के क्षयो पशम भाव से वैराग्य उत्पन्न हो गया, सदैव काल यही भाव आप अपने मन में भावने लगे कि–मैं जैन दीक्षा लेकर धर्म का प्रचार करूं जो लोग अन्ध श्रद्धा में जा रहे हैं उन को सुपथ में लाऊं।

जब आप के भाव अति उत्कट हो गये तब आप के माता पिता ने आपके इस प्रकार के भावों को जान कर

आपके विवाह का रचना रचदिया जो कि आपको बिना इच्छा माता पिता की आज्ञा का पालन करना पड़ा, अर्थात् उन्हों ने आप का शियाल कोट में लाला हीरा लाल (खंड वाले) ओसवाल की धर्म पत्नी श्री मती आत्मा देवी जी की पुत्री श्री मती ज्वाला देवी के साथ पाणी ग्रहण करवा दिया ।

जब आप का विवाह संस्कार भी हो गया परन्तु धर्म में आपके भाव और भी चढ़ते रहे किन्तु भोगावली कर्मों के प्रभाव से आप को संसार में ही कुछ समय तक ठहरना पड़ा आप जोहरियों में एक बड़े अंकित जोहरी थे, आप के दो पुत्रियें उत्पन्न हुई उन्हों का आप ने विवाह संस्कार किया फिर आपके भाव संयम में अतीव बढ़ गये ।

तब उस समय पंजाब देश में श्री रामलाल जी महाराज धर्म प्रचार कर रहे थे आप के भाव उनके पास दीक्षा लेने को हो गये । माता पिता का स्वर्ग वास तो हो हो चुका था, तब आप ने अपनी दुकान पर पांच गुमास्ते बिठलाए, और काम काज नियम

पूर्वक उनको दे दिया क्योंकि—आपका परिवार बहुत बढ़ चुका था—तब आप दीक्षा के लिए देहली में श्रीराम-लाल जी महाराज के चरणों में उपस्थित होगए किन्तु रामरत्न जी और जयन्तीदास जी यह भी दोनों आपके साथ ही दीक्षा के लिए तय्यार हुए तब आपको श्रीगुरु महाराज ने संयम वृत्ति की दुष्करता सिद्ध करके दिखलाई किन्तु आपने संयम वृत्ति के सर्व कष्टों को सहन करना स्वीकार करलिया क्योंकि—आप पहिले ही संसार से विरक्त होरहे थे, और परोपकार करने के भाव उत्कटता में आए हुए थे ! तब देहली निवासी लोगों ने दीक्षा महोत्सव रचदिया तब आपने १८६८ वैशाख कृष्णा द्वितीया के दिन उन दोनों के साथ दीक्षा धारण की, गुरुजी के साथ ही प्रथम चतुर्मास दिल्ली में किया ।

काल की बड़ी विचित्र गति है यह किसी के भी समय को नहीं देखता अकस्मात् श्रीमान् पण्डित—श्री रामलाल जी महाराज का दीक्षा के षट्मास के पश्चात् स्वर्गवास होगया, तब आपने शान्ति पूर्वक अपने गुरु भाइयों के साथ देश में विचरना आरंभ किया, और

साथ ही विद्याध्ययन करते रहे जब आपने श्रुताध्ययन करलिया तब आपके पास अनेक जन दीक्षित होने लगे १९१३ विक्रमाब्द दिल्ली में आपको आचार्य पद प्राप्त हुआ—फिर श्रावक लोग अपने समाचारपत्रों में श्रीपूज्य पाद पूज्य अमरसिंह जी महाराज इस प्रकार लिखने लगगए। पूज्य महाराज भी फिर देश विदेश में अपनी शिष्य मंडली के साथ होते हुए धर्मोपदेश करने लगे।

मारवाड़ मालवा, आदि देशों में भी अपने धर्म का अत्यन्त प्रचार किया और उस समय में पंजाब देश में बहुत से लोग जैन सूत्रों का पढ़ना गृहस्थों के लिए बन्द कर रहे थे आप ने जैन सूत्रों के प्रमाणों से योग्यता नुसार श्रावक लोगों को शास्त्राधिकारी सिद्ध किया,

आप की दिव्य मूर्त्ति ऐसी प्रिय थी कि—जो आप के दर्शन करता था वह मुग्ध हो जाता था आप की व्याख्यान शैली ऐसी ऊच कोटी की थी कि जिससे प्रत्येक जन सुनकर हर्ष प्रगट करता था, आपने अपने चरण कमलों से प्रायः पंजाब देश को अधिक पावन किया,

आप ऐसे ऊच कोटी के विद्वान् वा आचार्य होते हुए भी आप तपस्वी भी थे एक वार आप ने २३ व्रत (उपवास) लगातार किए पानी के शिवा (सिवा) आप ने और कुछ भी नहीं खान पान किया, ८ वा १५ दिन पर्यन्त तो आपने कई वार तप (उपवास) किये,।

सहन शक्ति आप की ऐसी असीम थी कि—विपक्षियों की ओर से आप को अनेक प्रकार के कष्ट हुए उनको हर्ष पूर्वक आप ने सहन किए।

अनेक सुयोग्य पुरुषों ने आप के पास दीक्षाएँ धारण की—जो आप के अमृतमय व्याख्यान को सुन लेता था वह एक वार तो वैराग्य से भीग जाता था, ग्राम २ वा नगर २ में आप ने फिरकर जैन ध्वजा फहराई और लोगों को सुपथ में आरूढ़ किया, अपनी गच्छ मर्यादा के कई नियम भी आपने नियत किए, जैन धर्म पर आप की असीम श्रद्धा थी—जैसे कि—
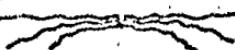
उन दिनों में आपके हाथों के दीक्षित किए हुएश्री श्री श्री १०८ स्वामी जीवनरामजी महाराज के शिष्य आत्मा राम जी की श्रद्धा मूर्त्ति पूजा की होजाने के

तब श्रावक संघ ने तारों द्वारा आपका हृदयाविदीर्ण करने वाला शोक समाचार नगर २ देदिया जिससे अमृतसर में बहुवसा श्रावक वा श्राविका संघ एकत्र होगया तब आपके शरीर का बड़े समारोह के साथ चन्दन द्वारा अग्नि संस्कार किया गया आपके बिमान पर लोगों ने ६४ दुशाले पाए थे।

अब पंजाब देश में आपके श्रावकों ने आपके नाम पर अनेक संस्थाएँ स्थापन की हुई हैं जैसे—अमर जैन पुस्तकालय, अमर जैन छात्रालय (बोर्डिंग) इत्यादि-२ पंजाब देश में प्रायः आपके शिष्यों के शिष्य संतान धर्मप्रचार कररहे हैं, आपके गच्छ का नाम लाहोरी गच्छ वा पंजाबी गच्छ, अन्य देशों में सुप्रसिद्ध होरहा है।

पाठक जनों का आपके पवित्र जीवन से अनेक प्रकार की शिक्षाएँ लेनी चाहिए।

आपने जिस प्रकार जैनधर्म का दृढ़ता पूर्वक प्रचार किया था इस बात का अनुकरण प्रत्येक व्यक्ति को करना चाहिए।

पन्द्रवां पाठ।

(धन्ना शेठ की कथा)

प्रिय सुज्ञ पुरुषो ! प्राचीन समय में एक राज गृह नगर वसता था उस के बाहिर एक सुभूमि भाग नाम वाला बाग था जो अति मनोहर था उस नगर में एक धन्ना शेठ वसता था जो बड़ा धनवान् था उस की भद्रा नाम वाली धर्म पत्नी थी, धन्ना शेठ के चार पुत्र थे उन के नाम शेठ जी ने इस प्रकार स्थापन किये थे जैसेकि-धन पाल १ धन देव २ धन गोप ३ और धन रक्षित ४ उन चारों पुत्रों की चारों वधुएँ थी-जैसेकि-उज्झिया १ भोग वतिका २ रक्षिका ३ और रोहिणी ४।

एक समय की बात है कि-धन्ना शेठ आधी रात के समय अपने कुटम्ब की विचारणा कर रहे थे साथ ही इस बात को भी विचार करने लग गये, कि-मैं इस समय इस नगर में बड़ा माननीय शेठ हूं, मेरी सर्व प्रकार से उन्नति हो रही है किन्तु मेरे विदेश जाने पर वा रुग्णावस्था के आने पर तथा मृत्यु के प्राप्त होने पर मेरे

पीछे मेरे घर के काम काज के चलाने वाला कौन होगा इस बात की परीक्षा करनी चाहिये।

ऐसा विचार करते हुये उन्हों ने जाना कि सुपुत्र तो सुयोग्य हैं वह भली प्रकार काम चला लेंगे परन्तु गृह सम्बन्धी उन की स्त्रियों की जांच करनी चाहिये कि वह घर के काम को किस योग्यता से चला सकती हैं तब सेठ जी ने प्रातः काल होते ही अपने सुपुत्रों को बुलाया और उन से कहा कि हे पुत्रो ! तुम तो हर प्रकार से गृहस्थ सम्बन्धी काम करने के योग्य हो मैं तुम से संतुष्ट हूं परन्तु मेरी इच्छा है कि अपने घर की स्त्रियों की परीक्षा लूं तुम उन को बुलाओ तब उन्हों ने अपनी अपनी स्त्री को अपने पिता के सन्मुख शिक्षा और परीक्षा के लिये उपस्थित किया जिस पर सेठ जी ने अपनी चारों वधुओं को पांच २ धान्य दे दिये और उन से कहा कि—हे पुत्रियो ! यह पांच धान्य मैंने तुम को दिये हैं तुम ने इन की रक्षा करनी अपितु जब मैं तुम्हारे से मांगूंगा तब तुम ने यही धान्य मुझे दे देने इस प्रकार की शिक्षा अपनी चारों वधुओं को कर विसर्जन कर दिया।

जब पहिली वधु ने शेठ जी के हाथों से पांच धान्यों को ले लिया और बाहिर आने पर उस ने विचार किया कि-शेठ जी वृद्ध हैं न जाने इन के कैसे २ संकल्प उत्पन्न होते रहते हैं क्या हमारे घर में धान्यों की कमी है। जिस समय शेठ जी मेरे से धान्य मांगेंगे तब मैं अपने कोठों से निकाल कर पांच ही धान्य शेठ जी को दे दूंगी फिर उस ने ऐसा विचार करके उन पांचों धान्यों को वहां ही गेर दिया।

जो दूसरी वधु को पांच धान्य दिये थे उस ने भी पहिली की तरह उन पर विचार किया, किन्तु वह धान्य गेरे तो नहीं अपितु छील कर खा लिये।

तीसरी वधु ने सोचा कि जब इन धान्यों के वास्ते इस प्रकार हमें शेठ जी ने बुला कर दिये हैं तो इस से सिद्ध होता है कि-इस में कोई न कोई कारण अवश्य है इस लिये इन की रक्षा करनी चाहिये। तब उस ने अपने रत्नों की पेटी में उन पांचों धान्यों को रख दिया इतना ही नहीं किन्तु उन की दोनों समय रक्षा करने लग गई।

जब चौथी वधु ने पांच धान्य ले लिये तब उस ने भी तीसरी की तरह विचार किया, किन्तु उन धान्यों को अपने कुल घर के पुरुषों को बुला कर यह कहा कि-हे प्रिय ! इन पांचों धान्यों को तुम ले जाओ और छोटासा एक क्यारा बना कर विधि पूर्वक वर्षा ऋतु के आने पर इनको बीज दो, फिर यथा विधि क्रियाएं करते जाओ जब तक मैं तुम्हारे से धान्य न मांगलूं—तब तक इस क्रम से यावन्मात्र धान्य होते जाएं वे सब बांजते जाओ ।

दास पुरुषों ने इस आज्ञा को सुनकर हर्ष प्रकट किया फिर वे उसी प्रकार पांच वर्ष पर्यन्त करते गए ।

पांचवें वर्ष उन पांचों धान्यों की वृद्धि होती गई धान्यों के कोठे भरगए । वे दास पुरुष प्रतिवर्ष सर्व समाचार श्रीमती रोहिणी देवी को देते रहे ।

जब पांच वर्ष व्यतीत होगए—तब अकस्मात् सेठ जी रात्री के समय अपने भवन में सोए पड़े थे अर्धरात्र के समय उनकी नींद खुलगई तब उनके मन में यह भाव उत्पन्न हुए कि—मैंने गत पांच वर्ष में अपनी बधुओं की परीक्षा के वास्ते उनको पांच २ धान्य दिए थे, अब देखें

उन्होंने पांच धान्यों से क्या लाभ उठाया। उन से वृद्धि की या नहीं—तब प्रातःकाल होतेही शेठजी ने फिर एक बड़ा विशाल भोजन मंडप तय्यार करवाया उसमें नाना प्रकार के भोजन तय्यार करवाए गए।

ताम्बूलादि पदार्थों का भी संग्रह किया गया फिर शेठजी ने अपनी ज्ञातिवाले पुरुषों को वा अपनी वधुओं के सम्बन्धि पुरुषों को विधिपूर्वक आमंत्रित किया जब भोजनशाला में सर्व स्वजनवर्ग इकठ्ठा होगया तब उनको भोजन दियागया सत्कार करने के पश्चात् उनके सामने अपनी चारों वधुओं को बुलाया गया।

फिर शेठ जी ने पहली वधु से पांच धान्य मांगे तब वही वधु ने अपने धान्यों के कोठों से पांच धान्य लाकर शेठ जी के हाथ में रख दिये तब शेठ जी ने उसे शपथ दे कर कहा कि—तुम्हें अमुक शपथ है कि—क्या ये वही धान्य हैं। तब वधु ने कहा कि—हे पिता जी! यह धान्य वह तो नहीं हैं किन्तु मैंने अपने धान्य के कोठों में से लाकर धान्य दिये हैं। तब शेठ जी ने उस वधु को विशेष सत्कार तो नहीं दिया और नहीं कुछ कहा परन्तु

उस के सत्य बोलने की प्रशंसा करके चुप हो रहे और उस को बैठने की आज्ञा दी, तदनु शेठ जी ने दूसरी वधु को बुलाया उस से भी वही धान्य मांगे उस ने भी पहली की तरह सब कुछ कह दिया तब शेठ जी ने उस को भी बैठने की आज्ञा दी, उस के पश्चात् तीसरी वधु को आमंत्रित किया गया उसने आकर सर्व वृत्तान्त का सुनाया और यह भी कह दिया कि—मैं कोई कारण समझ कर दोनों समय इन धान्यों की रक्षा करती रही तब शेठ जी ने तीसरी वधु का सत्कार करके अपने पास हो उसे भी बैठा लिया।

फिर शेठ जी ने चौथी वधु को बुलाया उस से भी वही धान्य मांग लिये गये उस ने सब के सामने यह कहा कि—पिता जी ! उन धान्यों के लाने के लिये मुझे शकट मिलने चाहिये तब शेठ जी ने कहा कि—हे पुत्रि ! यह कैसे ! तब उस ने जिस प्रकार धान्य लिये थे। और उन को बीजा गया था। पांच वर्ष में उन की इतनी वृद्धि हुई इत्यादि वृत्तान्त को सुन कर शेठ जी बहुत प्रसन्न हुये और चौथी वधु को बहुत ही सत्कार

ते हुये उस को अत्यन्त प्रशंसा की और उस को पूर्ण
आदर दिया ।

तब शेठ जी ने उन चारों वधुओं की परीक्षा लेली,
तब लोगों के सामने यह कहा कि–देखो ! मेरी पहली
पुत्र वधु ने मेरे दिये पांचों धान्यों को गेर दिया, इस
लिये ! मैं अपने घर की शुद्धि करने के काम में नियुक्त
करता हूं । जो घर में रज, मल, आदि पदार्थ हों वह
उन को घर से बाहिर गेरती रहे,,

दूसरी पुत्र वधु को मैं भोजन शाला में नियुक्त करता
हूं क्योंकि–इसने मेरे दिये हुये धान्य खा लिये हैं सो मैं
खाने पकाने के काम में स्थापन करता हूं ।

तीसरी वधु ने मेरे दिये हुये पांचों धान्यों की सावधानता पूर्वक रक्षा की है इस लिये । इसको मैं कोशाधिपत्नी बनाता हूं । जो मेरे घर में जवाहरात आदि
पदार्थ हैं उन की कुंची इस के पास रहेगी ।

चौथी पुत्र वधु ने मेरे दिये हुये पांचों धान्यों को

वृद्धि की है इस लिये । मैं इस को सब कार्यों में पूछने योग्य और हरएक कार्य में प्रमाण भूत स्थापन करता हूं।

इस प्रकार शेठ जी ने न्याय करके सभा विसर्जन कर दी । हे बालको इस दृष्टान्त से पूर्व समय का कैसा प्रमाण भूत न्याय सिद्ध होता है और तुम को शिक्षा मिलती है कि-पूर्व समय की स्त्रियां तक कदापि झूठ का सेवन न करती थीं तो तुम को योग्य है कि तुम मर्द हो कर कभी झूठ न बोलो और अपनी माता पिता के आज्ञाकारी बनो व बुद्धि को निर्मल करते हुये विचारवान् होने का पुरुषार्थ करो और अपनी स्त्रियों व बालकाओं को बुद्धिमता बनाओ यही इस कहानी का सार है—

सोलहवां पाठ ।

(जैन धर्म)

जैन धर्म एक प्राचीन धर्म है हिन्दुस्थान के बड़े बड़े शहरों (नगरों) बम्बई कलकत्ता में जैनियों की बहुत २ बस्ति है गुजरात काठियावाड़ मालवा मेवाड़ दक्खन

मारवाड़ मदरास पञ्जाब आदि में जैन लोग बहुत से
बसते हैं जैन जाति विशेष करके व्यापार करने वाली
जाति है यही कारण है कि जैन जाति में विद्या की
न्यूनता है और इस न्यूनता के होने से जैन धर्म का
प्रचार वर्तमान समय में इस प्रकार नहीं जैसा कि होना
चाहिये अपितु फिर भी जैन लोगों की संख्या देशों में
१०—११ लाख गणना की जाति है जैन धर्म की तीन
बड़ी शाखाएं हैं "श्वेताम्बर स्थानक वासी" दिगम्बर"
श्वेताम्बर-पुजेरे' या मन्दिर मार्गी" परन्तु इन में सब से
अधिक संख्या श्वेताम्बर स्थानक वासियों की ही है
दिगम्बर श्वेताम्बर स्थानक वासी इन में परस्पर भेद तो
थोड़ा सा ही है परन्तु विशेष भेद इस बात का है कि
श्वेताम्बर स्थानक वासी मूर्ति का पूजन नहीं मानते और
अन्य मानते हैं जैन धर्म वालों के बड़े २ प्राचीन हिन्दी गुज-
राती प्राकृत संस्कृत मागधी आदि भाषाओं की पुस्तकों
के भंडार हैं जो जैसलमेर आदि स्थानों में हैं इन की
बहुत सी पुस्तकें हस्त लिखित होने के कारण बड़े २
पुराने पुस्तकालयों और भंडारों में होने से प्रकट रूप
संसार में नहीं फैलीं परन्तु अब इन का प्रकाश देश को

सब ही भाषाओं में हो रहा है जिस से जैन धर्म का महात्त्व प्रति दिन बढ़ रहा है जैन धर्म ने जहां और बहुत से उपकार के बड़े २ काम किये हैं वहां संसार में सब धर्मों से उत्कृष्ट महान् काम मुख्य यह भी किया है कि इस धर्म ने—

(अहिंसा का सच्चा आदर्श)

देश के सामने रखते हुये इसका स्वयमेव पूर्ण पालन ही नहीं किया किन्तु हिंसा को देश निकाला देते हुये लोगों को पूर्ण अहिंसक बनाया यही कारण था कि इस धर्म पर बड़ी २ आपत्तियां आई परन्तु वह फिर भी आज तक जीवित और जागृत हो है—

जैन कुमार की प्रेमभरी भावना ॥

१

ऐ सर्वज्ञ देव तुमसे मेरी यह इलतिजा है ॥
इस संसार घोर बन में जो दुःख भरा हुआ है ॥
उस दुःख के मेटने की गुण ज्ञान जो दवा है।
वह हाथों में हो मेरे मेरी यह भावना है ॥

मैं उस दवा से मेटूं दुःख जग के प्राणियों का ।
और भ्रम सब मिटादूं दिल से अयानियों का ॥

२

रह करके ब्रह्मचारी विद्या करूं मैं हासिल ।
आलिम बनूं मैं पूरा हरएक फन में कामिल ॥
होकर धर्म का माहिर हरइक अमल का आमिल ।
चक्खूं चक्खाऊं सबको गुण ज्ञान के सरस फल ॥
रक्षा करूं मैं अपने बल वीर्य की निभा कर ।
सेवा करूं धर्म की मैं जिस्मो जां लगा कर ॥

३

अर्जुन सा बल हो मुझ में और भीम सी हो ताकत
अकलङ्क सी हो हिम्मत निःकलङ्क सी शुजायत ॥
श्रीपाल जैसी स्थिरता और राम जैसी इज्ज़त ।
विष्णु सा प्रेम मुझ में लक्ष्मण सी हो मुहब्बत ॥
उस करण जैसी मुझ में हां दानवीरता हो ।
गज सुख माल जैसी हां ध्यान धीरता हो ॥

४

सादी गिज़ा हो मेरी सादा चलन हो मेरा ।
मैं हूं वतन का प्यारा प्यारा वतन हो मेरा ॥

सच्चा सखुन हो मेरा पक्का प्रण हो मेरा।
आदर्श ज़िंदगी हो आत्म भजन हो मेरा॥
दुनिया के प्राणियों से ऐसा मेरा निबाह हो।
मुझ को भी इनकी चाह हो उनको भी मेरी चाह हो॥

५

दुनिया के बीच करदूं गुण ज्ञान का उजारा।
और दूर सब भगादूं अज्ञान का अंधेरा॥
मैं सब को एक करदूं आत्म का रस चखा कर।
वाणी पवित्र सब को महावीर की सुना कर॥
ज्योति मैं यह करूंगा तन मन लगा के अपना।
सेवा करूं धर्म की सब कुछ लगा के अपना॥

आवश्यक सूचनायें।

(१) जैन धम आत्मा का निज स्वभाव है और एक मात्र उसी के द्वारा सुख सम्पादन किया जासक्ता है—

(२) सुख मोक्ष में ही है जिसको कि प्राप्त करके

नोट—सब विद्यार्थियों को इसे कण्ठस्थ करके नित्य प्रति पढ़ना चाहिये।

यह अनादि कर्म मल से संसार चतुर्गति में परि भ्रमण करने वाला अशुद्ध और दुखी आत्मा निज परमात्म-स्वरूप को प्राप्त कर सदैव आनन्द में मग्न रहा करता है—

(३) स्मरण रक्खो कि मोक्ष मांगने और किसी के देने से नहीं मिलती उसकी प्राप्ति हमारी पूर्ण वीतरागता और पुरुषार्थ से कर्म्म मल और उनके कारण नष्ट करलेने पर ही अवलम्बित है—

(४) स्याद्वाद सत्यता का स्वरूप है और वस्तु के अनन्त धर्म्मों का यथार्थ कथन करसक्ता है—

(५) जैनधर्म ही परमात्मा का उपदेश है क्योंकि पूर्वापर विरोध और पक्षपात रहित सब जीवों को उनके कल्याण का उपदेश देता है और उसी के परमात्मा की सिद्धि और छाप इस संसार में है—

(६) एकमात्र 'ही' और 'भी' यही अन्य धर्म्म और जैनधर्म्म का भेद है यदि उन सब के भाव और उपदेश की इयता को 'ही' 'भी' से बदल दी जाय तो उन्हीं सबका समुदाय जैनधर्म्म है—

विद्वान् समयज्ञ स्वमत और पर मत के पूर्ण वेत्ता तत्त्व दर्शी मृदु भाषी प्रत्येक प्राणी से प्रेम भाव से वर्ताव करने वाले आपत्ति आ जाने पर भी धर्म में दृढ़ जिस भाषा की सभा हो उसी भाषा में उपदेश करने वाले इत्यादि गुण युक्त उपदेशकों द्वारा जब धर्म प्रचार कर-वाया जाये तब सफलता शीघ्र हो जाती है क्योंकि यद्यपि न्याय आदि शास्त्रों में उपदेशकों के अनेक गुण वर्णन किये गये हैं किन्तु उन गुणों में भी दो गुण मुख्यता में रहते हैं जैसे कि—"सत्य" और "शील" यह दो गुण प्रत्येक उपदेशक में होने चाहियें यावत्काल उपदेशक जन सत्यवादी और ब्रह्मचारी न होंगे तावत्काल पर्यन्त उन का उपदेश श्रोताओं के चित्तों को आकर्षित नहीं कर सकता अतएव प्रत्येक उपदेशक को प्रथम अपने मन पर विजय पा लेने के पश्चात् इस काम में प्रवृत्त हो जाना चाहिये।

आज कल जो पुष्कल उपदेश के होने पर भी यथेष्ट सफलता होती हुई दृष्टि गोचर नहीं होती उस का मूल कारण उपदेशकों के ज्ञान दर्शन और [illegible] की [illegible]

ही है जब यह तीनों गुण उपदेशकों में ठीक हो जायें तब उपदेश की सफलता भी शीघ्र हो जायगी समाज को उपदेशकों के चारित्र पर अवश्य ध्यान देना चाहिये।

पुस्तकें" द्वितीय साधन धर्म प्रचार का पुस्तकों द्वारा होता है बहुत से सज्जन जन पुस्तकों के पठन से धर्म प्राप्ति कर सकते हैं जैसे कि—जैन सूत्रों में भी लिखा है सूत्र रुचि श्रुत के अध्यन करने से हो जाती है जब विधी पूर्वक श्रुत का अध्यन व स्वाध्याय किया जायगा तब भी धर्म की प्राप्ति हो सकती है जैसे जब श्री देवर्द्धि क्षमा श्रमण जी महाराज जी ने ९८० में सूत्रों को पत्रों पर आरूढ़ किया आज उसी का फल है कि जैन मत का अस्तित्व पाया जाता है और उन्हीं सूत्रों के आधार से जैन आचार्यों ने लाखों जैन ग्रन्थों को निर्माण किया जो कि आज कल प्रखर विद्वानों के मान मर्दन करने वाले हैं और जैन तत्त्व को भली प्रकार से प्रदर्शित कर रहे हैं अतएव देश कालानुसार पुस्तकों और धार्मिक समाचार पत्रों द्वारा भी धर्म प्रचार भली भांति हो जाता है किन्तु पुस्तकों और समाचार पत्रों के सम्पादक पूर्ण

विद्वान् सच्चरित्र वाले होने चाहियें क्योंकि पुस्तकों और समाचार पत्रों द्वारा जिस प्रकार धर्म प्रचार हो सकता है उसी प्रकार इन से अधर्म प्रचार भी हो सकता है इस लिये इन के सम्पादक विद्वान् और शुद्ध चारित्र वाले होने चाहियें साथ ही वे अपनी बुद्धि में पक्षपात को तिलाञ्जलि देकर इस काम में यदि प्रवृत्त होंगे तब वे यथेष्ट लाभ की प्राप्ति कर सकते हैं यदि वे कदाचार में लगे रहेंगे तब उन का परिश्रम सदाचार के अतिरिक्त कदाचार की प्रवृत्ति कर डालेगा अपितु यदि उक्त अवगुण वाले सम्पादकों द्वारा कोई लेख विद्यार्थियों के पढ़ने में आजावे तब विद्यार्थियों का योग्य है कि वे अपनी बुद्धि में हेय (त्यागने योग्य) ज्ञेय (जानने योग्य) उपादेय (ग्रहण करने योग्य) पदार्थों का ध्यान रक्खें जो कि उन्हों पर उस लेख का प्रभाव ही न पड़सके अतएव सिद्ध हुआ कि जब तक पुस्तक और धार्मिक समाचार पत्र नहीं होंगे तब तक धर्मोन्नति के साधनों में न्यूनता अवश्य ही रहेगी इनके द्वारा वह न्यूनता दूर हो सकती है अपितु पुस्तकों का प्रचार देश भाषा में होने से लोगों को धर्म बोध शीघ्र हो जाता है

ैसे श्रीभगवत् की वाणी अर्द्ध मागधी भाषा में होने
ार भी जो श्रोताओं की भाषा होती है वह उसी में
परिणत हो जाती है इस कथन से स्वतः ही सिद्ध हो-
गया कि जो श्रोताओं व देशियों की वाणी हो उसी में
पुस्तकें और धार्मिक समाचार पत्रों से लाभ विशेष
हो जाता है अतएव सिद्ध हुआ कि धर्म प्रचार के लिये
शुद्ध पुस्तकों और धार्मिक समाचार पत्रों की अत्यन्त
आवश्यकता है इनके न होने से धर्म प्रचार में बाधा
अत्यन्त हो रही है।

व्यवसाय सभा, धर्म प्रचार के लिये प्रसिद्ध नगरों
में पुस्तकों की अत्यन्त आवश्यकता है क्योंकि जब
पुस्तक संग्रह ही नहीं है तब जिज्ञासु जन किस प्रकार से
लाभ उठा सकते हैं अतः यत्न और विनय पूर्वक शास्त्रों
का संग्रह वा अन्य पुस्तकों का संग्रह जब तक नहीं
होता तबतक धर्म प्रचार में विघ्न उपस्थित होते रहते हैं
बहुत से मुमुक्षु जन इस प्रकार के भी हैं जो निज व्यय
से पुस्तक मंगवाने में प्रमाद करते हैं वा असमर्थ हैं तथा
अपने मत से भिन्न मतों की पुस्तकें मंगवाने में उनके

मन में संकोच रहता है किन्तु जब उनको किसी पुस्तकालय का सहारा मिलजाय तो वे पठन करने में प्रमाद नहीं करते उनमें बहुत से भद्र जन ऐसे भी होते हैं जो उन सूत्रों वा ग्रन्थों को पढ़कर धर्म से परिचित हो जाते हैं तथा यदि किसी कारण से किसी उपदेशक का शास्त्रार्थ नियत हो जाय तब उस समय उस पुस्तकालय से पर्याप्त सहायता मिल सकती है स्वाध्याय प्रेमियों को तो पुस्तकालय एक स्वर्गीय भूमि प्रतीत होती है किन्तु इसका प्रबन्ध ऐसे सुयोग्य विद्वान् पुरुषों द्वारा होना चाहिये जो कि इस कार्य के पूर्ण वेत्ता हों शास्त्रोद्धार से,जीव कर्मों की निर्जरा करके मोक्ष तक भी पहुंच सकता है अतएव सिद्ध हुआ कि धर्म प्रचार के लिये पुस्तकालय भी एक मुख्य साधन है।

"व्याख्यान" जनता में प्रभावशाली व्याख्यानों का होना भी धर्म प्रचार का मुख्यांग है क्योंकि जो व्याख्यान शैली निज स्थानों में प्रचलित हो रही है उसमें नित्य के श्रोतागण ही लाभ उठा सकते हैं किन्तु जो पुरुष उस स्थान से अनभिज्ञ हैं वा किसी कारण से उस स्थान

में आना नहीं चाहते वे धर्म लाभ नहीं उठा सकते इस लिये सब लोगों में धर्म प्रचार हो इस आशा से प्रेरित हो कर व्याख्यान का प्रबन्ध ऐसे स्थान में होना चाहिये जहां पर बिना रोक टोक के जनता आ सके और उन में धर्म प्रचार भली प्रकार हो सके अपितु साधुओं वा उपदेशकों को ऐसे ग्रामों वा नगरों में जाना योग्य है जहां पर धर्म प्रचार की अत्यन्त आवश्यकता हो क्योंकि वर्तमानकाल में ऐसा देखा जाता है कि श्रोता-गणों की उपदेशक जनही प्रायः प्रतीक्षा करते रहते हैं किन्तु श्रोता गण उपदेशकों की प्रतीक्षा विशेष नहीं करते जब ऐसे क्षेत्रों में धर्म प्रचार करना चाहें तो यथेष्ट फल की प्राप्ति होनी दुसाध्य प्रतीत होती है अतएव जिन क्षेत्रों में धर्म प्रचार की आवश्यकता हो उन्हीं क्षेत्रों में धर्म प्रचार के लिये विशेष प्रबन्ध करना चाहिये तब ही धर्मोन्नति हो सकती है।

"पाठशालाएं" धर्म प्रचार के लिये धार्मिक संस्थाओं की अत्यन्त आवश्यकता है क्योंकि जबतक बच्चों को धार्मिक शिक्षा नहीं दी जाती तबतक वे धर्म से अपरि-

चित ही रहते हैं इतना ही नहीं किन्तु वे समय पाकर नास्तिकता में फंस जाते हैं इसलिये बच्चों के कोमल हृदयों पर पहले से ही धम शिक्षाओं के बीज अंकुर उत्पन्न करदेने चाहिये जो माता पिता अपने प्रिय पुत्र पुत्रियों को धर्म शिक्षाओं से वंचित रखते हैं वे वास्तविक में अपनी संतान के हितैषी नहीं हैं न वे माता पिता कहलाने के योग्य ही हैं क्योंकि उन्होंने अपने प्रिय पुत्र और पुत्रियों के जीवन को उच्च कोटि के बनाने का प्रयत्न नहीं किया जिससे वे अपने जीवन में उन्नति के फल देखने में अभाग्य ही रहजाते हैं और धर्म शिक्षा के न होने के कारण से ही उनकी प्यारी संतान जूआ मांस मदिरा शिकार परस्त्री संग वेश्या गमन चोरी आदि कुकर्मों में फंसी हुई जब वे देखते हैं तब परम दुःखित होते हैं और संतान भी अपने माता पिता के साथ असभ्य बर्ताव करने लग जाती है जिस व्यवहार को लोग देख भी नहीं सकते यह सब धार्मिक शिक्षा न होने के ही हेतु हैं अतएव सिद्ध हुआ कि धर्म प्रचार के लिये धार्मिक संस्थाओं की अत्यन्त आवश्यकता है।
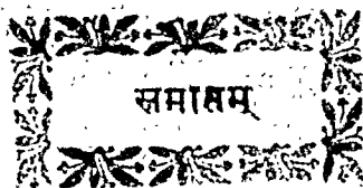
"प्रेम" धर्म प्रचार के लिये सबसे प्रेम करना चाहि
यदि कोई अज्ञात जन असभ्य वर्ताव भी करे तो उ
सहन शक्ति द्वारा शान्ति पूर्वक सहन करना चाहि
विपक्षियों के प्रश्नों के उत्तर सभ्यता पूर्वक देने चाहि
किन्तु प्रश्नोत्तर में किसी के चित्त दुखाने वाले उ
हास्यादि कृत्य न करने चाहियें क्योंकि जब प्रश्नोत्तर
हास्यादि क्रियायें की जाती हैं तब उस की क्षुद्र वृ
प्रतीत होती है किन्तु गम्भीरता सिद्ध नहीं होती इ
लिये सभ्यता पूर्वक सब से वर्ताव होना चाहिये अ
ऐसे विचार न होने चाहियें कि यह तो जैनेतर हैं इन
सभ्यता की क्या आवश्यकता है यह क्षुद्र वृत्ति व
पुरुषों के विचार होते हैं गांभीय गुण वाले जीव प्रा
मात्र से सभ्य व्यवहार करते हैं यही मनुष्यत्व का लक्ष
है तथा जब किसी से प्रेम ही नहीं है और न ही स
वर्ताव है तो भला धर्म प्रचार की वहां पर क्या आ
की जा सकती है अतएव सिद्ध हुआ कि धर्म प्रचार
लिये सब से प्रेम करते हुये किसी से भी असभ्य वर्त
न करना चाहिये अपितु प्रत्येक प्राणी के साथ सहा

-भूति रखते हुये धर्मोन्नत्ति के साधनों द्वारा धर्मोन्नत्ति करना प्रत्येक प्राणी का मुख्य कर्तव्य होना चाहिये।

ओं शान्ति ! शान्ति !! शान्ति !!!

प्रिय सुहृद्वर्ग ! यह पुस्तक श्रीमान् श्री चन्द्रजी अम्बाला निवासी की पवित्र स्मृति में मुद्रित की गई है।

आपका जन्म विक्रमाब्द १९३१ आश्विन शुक्ला ११ बुद्धवार और स्वर्गवास का समय १९७४ आश्विन शुक्ला प्रतिपदा है। आप जैन धर्म के बड़े हितैषी थे, आप की जैन मुनियों पर असीम भक्ति थी आप धर्म-स्नेही थे, उदार थे तथा अपने स्थान पर मुख्य थे आप के सुयोग्य पुत्रों ने आप का नाम सदैव रखने के लिये इस पुस्तक को अपने व्यय से मुद्रित करवाके धर्म परिचय दिया है जिस का अनुकरण प्रत्येक गृहस्थ को करना चाहिये।

सूचना—इस शिक्षावली में लिखी गई शिक्षाएं अध्यापक गण कृपा करके बच्चों को बड़े प्रेम से समझावें क्योंकि उन का हृदय अति कोमल होता है।

जैन धर्म शिक्षावली के सारे भाग मिलने के पते—

१. डा. शिवप्रसाद अमरनाथ

जैन,

तिजारत गंज अम्बाला शहर।

२. डा. हीरालाल चान्दमल

तिजारत गंज

अम्बाला शहर।

॥ श्रीजीनेश्वरायनमः ॥

श्रीमेणरेहासतीनीचोपी

लिख्यते ।

दोहा—आदजिनेश्वर पाय नमुं, बृधमान जगदीस
अरीभंजन अरी हंतजी, चरणनमाऊँ शीस १
गुणधर गोतमस्वामीजी, लब्धतणा भंडार।
मैं चरणा हाजर खड़ो, दीजो पार उतार २ ॥
फेर नमुं गुरुदेवने, वँदु सीस नमाय ।
ढाल कहुँ रलियामणी, सामलजोचितलाय ३

॥ ढाल पहेली ॥ (राज वीयाने राजपीयारो) ॥ यादेसी ॥ जम्बुदीपका भरथक्षेतर में। नगरी सुदरसण भारीजी॥राजकरे तीहां मणीरथ राजा । सुखिया बसे नर नारीजी ॥ राज वीयानें

राजपीयारो ॥ टेक ॥ १ ॥ राज रिधी जिनके अती सोहे । महेल बण्यां सुखदाई जी ॥ हाथी घोड़ा है रथ घणेरा । प्यादल फोज सवाई जी ॥ राज० ॥ २ ॥ मणीरथ राजाके धारणी राणी । अती वल्लभ सुखमालाजी ॥ आनंद सुमहेलां सुख भोगे बंदव एक नीरालाजी ॥ राज० ॥३॥ नाम तीहांरो है जगबाहु । मेणरेहातेनी नारीजी॥ रुप योवन सुखमाल बखाणो । प्रीतमकी अती प्यारीजी ॥ राज० ॥ ४ ॥ आनँदसे महेलां मांही रेता । बंदव दोनों प्याराजी ॥ कुँवर एक है मेणरथा के । आगे सुणो अधीकाराजी॥राज० ॥ ५ ॥ सुखभोग वे निज महलां के मांही । आनंद हरप अपाराजी । राज करे राजा सुख-मांही । जगबाहु रहे न्याराजी ॥ राज० ॥ ६ ॥ ढाल भली या पहेली जाणो । राज तणो अधी-

कारोजी कहे नंदराम जोड़ी इम गावे । मुझ सरणो गुरु चरुणांरोजी । राज० ।।७।।

दोहा–केइ दिनां के आंतरे, जगबाहुनी नार ।
स्नानकरे निज महेलपे,बस्तर दूर उतार १॥
तीण अवसरके मांयने, सनमुख राजातीर ।
नजर पड़ी अंग ऊपरे,कँप्यो सकलसरीर २॥
मणीरथनृप इम चीन्तवे,रुप अनोपमनार ।
सुखभोगुं अणी संगमें इन्द्राणी ऊणीयार ३॥
पापऊठ्यो मन मांयने,आगे सुणो वीचार।
कपट चलावे राजवी,सामल जो नरनार ४॥

(ढाल दूसरी) अणी आहुका हुटाने सांदो कोइ नहींजी ॥ यादेसी ॥ राजा तो कपट बीचारीयोजी ॥ टेक ॥ मनीरथ राजा मन चीन्तवेजी । पाप ऊठ्यो दिल मांयरे ॥ जगबाहुने तेड़ा वियाजी। हाजर हुवा लघु भायरे ॥ राजातो० ॥१॥ मणी-

रथ कहे तुम सामलोजी । जावो आयुध साला मांयरे ॥ फोज तयारी करो सामठोजी । देरी तो मत नां लगायरे ॥ राजातो०॥२॥ करो सजाई तुम फोजां तणीजी । सारा लेवो हथीयाररे ॥ देस फते करवामें जावसुंजी । सांचीया लीजो दिलधाररे ॥ राजातो० ॥ ३ ॥ हाथ जोडीनें जगबाहु कहेजी । आप वीराजो नीज ठामरे । देस फते करवामें जावसुंजी । येही हमारो नीज कामरे ॥ राजातो० ॥ ४ ॥ राजा कहे तुम जावो सहीजी । हार मत जावो ऊणी देसरे ॥ काम फते कर जो तुम जायनेजी । फोजा संगमें तुम लेवो वीससरे ॥ राजातो० ॥५॥ जगबाहु फोजां लेकर चालियाजी । कोस दस बीस गया दुररे॥ एक दो दिनके आंतरेजी । राजाकी नजर कुररे ॥ राजातो० ॥ ६ ॥ वस्त्र रंगीला जरकस

तणांजी । गहेणां जड़ाऊ अती मंगायरे ॥ दासी के हाथे राजा भेजीयाजी । मेणरेहाने दीजे जायरे ॥ राजातो० ॥ ७ ॥ दासी आई ततखीण राजा तणीजी । मेणरेहा के नीज महेलरे ॥ आभुक्षण गहेणां सबही देवतीजी । राजा भेज्या है तुमरी गेलरे ॥ राजातो० ॥ ८ ॥ मेणरेहा तो मन चीन्तवेजी । किम कारण भेजा राजरे ॥ मनमें तो संदे अती ऊपनीजी । इश्वर राखे म्हारी लाजरे ॥ राजातो० ॥ ९ ॥ पाचा फेरूं तो राजा कोपसीजी । अणी कारण सुं लाचार-रे । आभुक्षण गहेणां सबही राखियाजी । दासी ने दीनी ललकाररे ॥ राजातो० ॥ १० ॥ रात समें राजा आवीयोजी । मेणरेहारे नीज ठामरे ॥ बाहर खड़ो राजा हेलो करेजी । मेणरेहा कहे सुं कामरे ॥ राजातो० ॥११॥ मेणरेहा तो अच-

रज पामीयोजी । महेल नहीं म्हारा नाथरे ॥ ऊठीनें चालीया सासुकनें जी । राजा आया महेलां के वहाररे ॥ राजातो० ॥ १२ ॥ माता बुलाई राजासे कयोजी । महेल बीजाछे थारा लालरे॥ आज भुलीने किम आवीयोजी । राजा तो दीनी बात टालरे ॥ राजातो०॥१३॥ नीज महेलां आईने चीन्तवेजी । अब करसुमें बीजो ऊपावेरे । मेणरेहासुं सुख भोगवुंजी । जद लागे- गा मारो डावरे ॥ राजातो० ॥१४। ढाल बीजी राजा ना कपटनीजी । आगे सुणो अधीकाररे॥ नंदराम कहे वे कर जोडनेजी । गरु चरणां नम- सकाररे ॥ राजातो० ॥ १५ ॥

दोहा—मेणरेहा मन चीन्तवे, कन्थ गया परदेश ।
राजा लारे लागीयो, देखुं चरीत्र हमेश १॥
कागद लिखीयो कन्थने,वेग पधारोआप।

काम जरुरी ऊपनो, राजाके दिल पाप २॥
कागद ले चाकर गयो,दियो जगबाहुहाथ।
बेग बुलाया आपने,ढील न कीजे नाथ ३॥
जगबाहु आवाभणी, महोरथ पूछे ऐम।
पंडित चतुर बीचार जो,रहे कुशलऔरक्षेम ४
पंडित उत्तर इम दियो,मत जावो सीरदार।
सुकन भला नहींदीखता,नहींजावामें सार ५
जगबाहु कानें सुणी, दिलमें करे बीचार।
कर्म लिख्या सो नाटले,करे जोसरजनहार ६
॥ ढाल तीसरी (कर्म न छुटेरमाणीयां) टेक
जगबाहुपीछा आवीया, निज नगरी के बार
सरवरके ऊपर ठेरीया,राजा का डरबीचार कर्म १
भांणदीसे जहां लगे, करणे अगे मुकाम। रजनी
वेलांमें चालणो, वातभली परमाण ॥ कर्म २ ॥
अवसरदेखीने चालिया, जगबाहु अपणे ठाम।

राणी देखीने खुसीहुई, ऊठकर कीनो परणाम ॥ कर्म ॥ ३ ॥ मेणरेहा इम बोलती, बेकरजोड़ी नें हाथ । सुणजो प्रीतम या बातड़ी, साहेब सुजहो सिरनाथ ॥ करम ॥ ४ ॥ राजाकुदृष्ट बिचारंता, अरजकरूं भरतार । तीण कारणसेती तेडीया, सीयलवँती में नार ॥ करम ॥ ५ ॥ बात सुणीअचरज करे, जगबाहुहे सिरदार सुख सुखेबेठे महेलमें, आगे सुणो अधीकार ॥करम ६ ढालभली यातीसरी, अबकांइ होयवीचार। नँद राम इम बीनवे, चतुर सुणजो नरनार ॥ करम७॥ दोहा–जगबाहु मन चीन्तवे, छानें आयोराज। डर लागो मनमे अती, मील्यो नृप सुंजाय १ मणरिथ राजा देखने, दिलमें करे बीचार । बंद बरणसुं आवीयो, किण का रणअेक धार ॥२॥ राजाने डरलागीयो, बँदब हेरण सुर । नांजाणुं

ये क्याकरे, चेतुं अभी जरूर ॥ ३ ॥ जगवाहु वली आवीयो निजमहेलां ततकाल। राजाघात बीचारतो, होजाऊं हुसियार ॥

ढालचोथी ॥ (श्रीमुनीसोव्रतसायवा)

यादेसी मणीरथराय इम चीन्ते ॥ टेक ॥ वँ-दव वातयो जाणीयो, अवसर देखीनें देवसीडाव के ॥ बातकीनीया जुगतीनहीं फौज चडाईनें मारसी घावके ॥ मणीरथ ॥ १ ॥ इम जाणीनें मन चीन्ते, ले हथीयार जाऊं निजठाम के दुसमण दुर हटायदुं, फेरकर स्यामन चावीया काम के मणीरथ ॥ २ ॥ रात समें राजा चालि-यो । जाय पहोचोजग वाहुरे महेलके ॥ हाथमें खड़ग लीनी सही । मणेरहा करे कन्थनीटेलके॥ मणी ॥ ३ ॥ मेण रेहा इमवोलती । राजवी आवीया मारवा काजके ॥ देखलो सामनेंयखड़ा

मेणरेहासतीकीनीछे लाजके ॥ मणी ॥ ४ ॥
प्रीतम छोड़अलगीहुई । जायरेठी ऐक भवन
मुझारके ॥ चन्द्रजस कुँवर नें लेयनें जगवाहु
कहे कोणबीचारके ॥ मणी ॥ ५ ॥ राय जग
वाहुकने आवीया । कोप करीनेंदीनो छेयोघाव
के ततखीण आय भोमींपड़्यो । भाइने मारचा
ल्यो तवरायके ॥ मणी ॥ ६ ॥ राजाचाल्योनीज
महेलमें मारग में मिलीयो छे भुजंगके ॥ देखतां
रायने डसलियो । वेदनांऊपनी अतीघणीअंगके
मणी ॥ ७ पापकीनां सो प्रगटहुवा । देखलो
येही परतक्षपरमाणके ॥ काल करीने गयो नर-
कमें ॥ राज खोयोकरीजीवकी हाणके ॥ मणी ८ ॥
ऐमसुणीने चातुरडरो । परतीरिया तणोंछोडज्यो
संग के जोमलो चाहो अणीजीवको । तेहनें

जाण जो कालो भुजंगके मणी ॥ ९ ॥

ढालचौथीधामसीरथनो ।

पापना फलहे जहेर समानके ॥ नँदराम इमवीनवे । ऊतम पुरुष हो राखजोध्यानके ॥मणी१०॥

दो०—मेंणरेहा प्रीतम कनें, हाजरहुई ततकार ।
देख सुरत भरतारकी, दिलमें करे बीचार
प्रीतम प्राण वचेनहीं में देऊं अवसाज ।
धर्म सुणाऊं हीतकरी, ये अवसरहेआज

ढालपांचमी

मेणरेहा मन चीन्तवेरेलाल ॥ टेक ॥ प्रीतमका ऐवाहवाल हेसुज्ञानी । सरणं चारसुणावी-यारेलाल॥त्यागकरायासुधभावसे सुज्ञानी मेण॥१॥ कानमाहीं सरदी लियारेलाल । जगवाहुतीण वाररे सुज्ञानी ॥ घड़ी दोयकके मांयनेरेलाल । आतम कारज साररे सुज्ञानी ॥ मेण ॥ २ ॥

देवलोकमाहीं ऊपनोरेलाल । आगे चेलिगा अधीकाररे सुज्ञानी ॥ मेणरेहाईम वोलतीरेलाल राजाको डर अती जाणेरसुज्ञानी मेण ॥ ३ ॥ मोय राजा दुख देवसीरेलाल । आभुक्षण दियाहे उताररसुज्ञानी ॥ जीरण वसतरपेरीयारेलाल । चालीमहेलनीज छोड़रे सज्ञानी ॥ मेण ॥ ४ ॥ मनमे सोचहे अती वणोरेलाल । मे तिरियाकी जातरे सुज्ञानी ॥ चालीहे अटवीं मायनेरेलाल । कुंवर गरभमुझारहे सुज्ञानी ॥ मेण॥ ५ ॥सोच करेनेणां झूररेलाल । पाप ऊदे हुवा आजरेसुज्ञा नी ॥ कर्म लिख्या सोही नांटलेरे लाल । देखो अचरजकी वातरे सुज्ञानी ॥ मेण ॥ ६ ॥ वात अणीकी फेर चालसीरे लाल । अवकहुं दुजोअ-धीकाररेसुज्ञानी ॥ नँदराम डमवीनवेरेलाल । गरु चरण सीश नमायरे सुज्ञानी ॥ मेण ॥७॥

दोहा-राजा मृत्यु पामीयो, जीणकी मालूम नाय।
डरही बड़ामें आणनें, नीकलगई वनमाय १॥
रातगई दिन ऊगीयो, खबर हुई चोफेर।
राजा मृत्यु पामीयो, चड्यो सांपको जेहर २॥
कुँवरचंद्र जस जागीयो, देख पीताकाहाल।
दिलमांही अचरज करे, कैसा हुवा हवाल ३॥

॥ ढाल छट्टी ॥

कर्म लिख्या सोही कैसेरे छुटे ॥ टेक ॥ कुँवर-चँद्र जस मन इम चीन्ते। हुवा पीताका ऐवा हालरे लाल॥ कोण आयो ऐवो दुसमण महेलां मुंडो काम ऊपायोरे लाल ॥ कर्म० ॥१॥ मालूम होवे तो वेर ऊतारुं। ऐसी दिलमांही धारीरे लाल॥ बिन जाण्या कीमआल जो देऊँ। वीछड़ा पड्या ऐवा मारे रे लाल ॥ कर्म० ॥ २ ॥ माता म्हारी सती मेणरेहाजी। वोभी ऊठ कहांगई रे

लाल ॥ चोर आयो के कोई लेगयो । मालुम मुझनें नाईरे लाल ॥ कर्म० ॥ ३ ॥ मैं कहां जाऊंनें खबर लगाऊं । माताका दरसण पाऊंरे लाल ॥ विन वतराया तो किम ऊठ चाली । किसतर मन समझाऊंरे लाल ॥ कर्म० ॥ ४ ॥ आस पास सब चोकस कीनी । केई असवार दोड़ायारे लाल ॥ खबर नहीं नीज माताकी लागी । मनमें वड़ा पछतायारे लाल ॥कर्म०५॥ मणीरथ राजाने और जगवाहु। दोई ना कारज करीयारे लाल ॥ कुँवरचंद्र जस गादी पै वैठा । गावे हरष वधावारे लाल ॥कर्म० ॥६॥ आनंद में कुंवर अवरेवे । मात पीता नहीं भुलेरे लाल॥ मोह करमकी वात जो जाणो । हंसकर दिल नहीं खोलेरे लाल ॥ कर्म० ॥ ७ ॥ ढाल भली या छटी जो गाई । कुंवर गादीपर वेठारे लाल॥

नंदराम कहे गरु परसादे । चरणा सीस नमावेरे लाल ॥ कर्म० ॥ ८ ॥

दोहा—कुंवर रहे आनंदमें, राज करे सुखचैन ।
आगे सुण जो वारता, खोलो हिरदय नेण १
मेणरेहा वन मांयने, गई अकेली आप ।
सोचकरे मनमें अती पूर्वजन्मका पाप २॥
कुंवरजनामियों वन वीषे, नहीं दूजोकोइसाथ
ऐसी वीपता पड़रही, जाणें दीनानाथ॥३॥

ढाल सातमी ॥ (रेजीवाचीमल जीनेश्वर वंदिये) यादेसी ॥ हे जाया अणी अटवीके मांयने । टेक ॥ थे तो जनम लियो छे आयरे जाया । मैं दुखियारी पापणी ॥ म्हारे पास कछु भी नायरे जाया ॥ अणी० ॥ १ ॥ राजसभा मांही जनमतो । होता ऊछब हरष अपाररे जाया ॥ दास्यां मंगल गावती । घणां सुखिया होता नर

नाररे जाया ॥ अणी०॥२॥ लाख वधाई वांटती मैंतो देती घणो इनामरे जाया ॥ पुन्य इसाथारा देखले । मारे पास नहींरे छदामरे जाया॥ अणी ॥ ३ ॥ कर्म जोग विछड़ा पड्या । थारे पिता-जी की दोकाररे जाया ॥ मैं बनमाहें डोलती । मारे किसको नहीं आधाररे जाया ॥ अणी०॥४॥ सरणो एक जिन राज को । बीजो सीयल सिरो-मण जाणरे जाया ॥ धर्म्म तणो सरणो सीरे । ये तो है प्रतक्षपरमाणरे जाया॥अणी०॥५॥ चीर ऊतारयो अँगतणो । आधो लीनो सतीनें फाड़ रे जाया ॥ आधोही पाछो ओड़ियो । फिर करती प्रेम विचाररे जाया ॥ अणी०॥६॥ अङ्ग-वसतर तो विछायने । कुँवरने दियो छे सुलायरे जाया ॥ सीला ऊपर मेलियो । अब पुन्य थारा काम आयरे जाया ॥ अणी० ॥ ७ ॥ कुँवर में

लीने सती चालती । गई एक नदी के तीररे जाया ॥ स्नान करीने सुधथई । देखो नेणा में बरसत नीररे जाया ॥ अणी० ॥ ८ ॥ ढाल-भली या सातमीं । कुँवर मेल्यो वनके मांयरे जाया ॥ नँदराम ईमवानिवे । अव किसतर होवे सायरे जाया ॥ अणी० ॥ ९ ॥

दोहा–मेणरेहा फिर चालती, आगे वनमुझार ।
पुन्य खुलया अब कुंवरका सामल जो नरनार
मिथिलानगरी कोपती, चाडियो सेलसिकार।
सँग मांय सिरदारहे, फिरतो वन मुझार ॥ २ ॥
आगे आतां देखीयो, बालक पाडियो वन ।
सिल्ला ऊपर सोरयो, धन जरणीको मन ॥ ३ ॥
हे हतीयारी पापणी, किसतर छोड्यो पुत ।
मुझको मालुम नापडे, हे रचना अद्भुत ॥ ४ ॥

ढाल आठमी ॥ (रतनकामर कातवनकी)

देसी ॥ राजा पासे आयाजी, हाथां माय ऊठायाजी, मन भायाजी, ये बालक पुण्यवँत हेजी ॥ १ ॥ देखीने अचरज पायाजी, वन-मांहीं कोण सुलायाजी । पदरायाजी, भागहीण थी मायडीजी॥ २ ॥राजसभामें सोहेजी, नीरं-खता मनमोहेजी । सुख होवेजी, महेलां में लेजावसुंजी॥ ३ ॥मिथलाका भोपालाजी, पद भोतर बड़ा दयालाजी । प्रीत्रीपाला जी, कुंवरने लीनो सहीजी ॥ ४ ॥ राजभवन के मांहीजी पुत्रएक भी नाईजी । सुखदाईजी, निज नगरी मांई लावीयाजी ॥ ५ ॥ राणी के गोद सुलाया जी, देखीनें अती सुखपायाजी । मन भायाजी राजाराणी महोछवकरेजी ॥ ६ ॥ दासां मँगल गावेजी, कुँवरनें गोद खेलावेजी, हुलरावेजी,

नाम कुंवरकोथापीयोजी ॥ ७ ॥ नमीयं कुंवर सुखदाइजी, दीनोंनाम थपाईजी । जुगमाहीजी कुँवर सुख सुंमोटाहुवेजी ॥ ८ ॥ आनँद जये जये कारीजी, सुखसँपत में नरनारीजी । बलिहारीजी, मीथलानगरीहे भलीजी ॥ ९ ॥ ढाल आठमी गाईजी, सागे बात बताईजी । सुखदाई जी, नँदरामयुंबीनवेजी ॥ १० ॥

दोहा—कुँवर रहे आनंदमें, मिथलानगरी मांय ।
कहुं हकीगत पाछली, सुंण जोसबाचितलाय॥
मेणरेहा मोटी सती, फिरती वनंमुझार ।
पुन्य जोग वनमायने, भली करे कीरतार॥ २॥
विध्याधर एक जाबता, बैठ बीमांणके मांय ।
श्रीजिनदरसण कारणे, सामल जोचीतलाय ३
नजर पड़ी भोमींपरे, तिरिया डोले केम ।
तुरत बीमाण ऊतारियो, नीरखत जाग्योप्रेम ४

ढाल आठमी ॥ (रतनकामर कातवनकी)

देसी ॥ राजा पासे आयाजी, हाथां माय ऊठायाजी, मन भायाजी, ये बालक पुण्यवँत हेजी ॥ १ ॥ देवीने अचरज पायाजी, वन-मांहीं कोण सुलायाजी । पदरायाजी, भागहीण थी मायड़ीजी॥ २ ॥राजसभामें सोहेजी, नीरं-खता मनमोहेजी । सुख होवेजी, महेलां में लेजावसुंजी॥ ३ ॥मिथलाका भोपालाजी, पद मोतर वड़ा दयालाजी । श्रीत्रीपाला जी, कुंवरने लीनो सहीजी ॥ ४ ॥ राजभवन के मांहीजी पुत्रऐक भी नाईजी । सुखदाईजी, निज नगरी मांई लावीयाजी ॥ ५ ॥ राणी के गोद सुलाया जी, देवीनें अती सुखपायाजी । मन भायाजी राजाराणी महोछवकरेजी ॥ ६ ॥ दासां मँगल गावेजी, कुँवरनें गोद खेळावेजी, हुलरावेजी,

नाम कुंवरकोथापीयोजी ॥ ७ ॥ नमीयं कुंवर सुखदाइजी, दीनोंनाम थपाईजी । जुगमाहीजी कुँवर सुख सुंभोटाहुवेजी ॥ ८ ॥ आनँद जये जये कारीजी, सुखसँपत में नरनारीजी । बलि-हारीजी, मीथलानगरीहे भलीजी ॥ ९ ॥ ढाल आठमी गाईजी, सागे बात बताईजी । सुखदाई जी, नँदरामयुंबीनवेजी ॥ १० ॥

दोहा—कुँवर रहे आनंदमें, मिथलानगरी मांय ।
कहुं हकीगत पाछली, सुंण जोसबाचितलाय ॥
मेणरेहा मोटी सती, फिरती वनंमुझार ।
पुन्य जोग वनमायने, भली करे कीरतार ॥ २ ॥
विध्याधर एक जाबता, बैठ बीमांणके मांय ।
श्रीजिनदरसण कारणे, सामल जोचीतलाय ३
नजर पड़ी भोमींपरे, तिरिया डोले केम ।
तुरत बीमाण ऊतारियो, नीरखत जाग्योप्रेम ४

॥ढाल नोमी॥ (महेलांमें बैठीहो राणी कमलावती)

यादेसी॥ सामल हे तिरीया किम कारण डोले वनके मांयने ॥ टेक ॥ रुप इन्द्राणी समयो देखीयो नेण नीरख्यां तरपत नहीं थाय। या तिरीया सोहे राजभवन में। दरसण करता थो जीव लोभाय ॥ सामल हे ॥१॥ राजा मनमाहीं पाप बीचारियो। लेजाऊँ अपणे नीज महेल ॥ राण्यां मांही पटनारया सोवती। इणके संगाते कर सांसेल ॥ सामल हे ॥ २ ॥ वलती मेणरेहा इम बोलती। पन्थ जातामें भुली गेल। कीरपा करदीजे मुज बँदवा। मोय बतला वस्तीकी गेल ॥ सामल जो सुगुणां मैं हूँ दुखियारी सरणें जिन तणें ॥ टेक दूसरी ॥ ३ ॥ विध्याधर कहे सुणों सुन्दरी, बैठ वीमाण मांहीं चाल। नगरी लेजाऊँ खासा हम तणी। तु है सुन्दर बड़ी

सुखमाल ॥ सामल हे ॥ ४ ॥ मेणरेहा सती इम बोलती, कीनी तयारी कठे आप । लेय बीमाण पधारो ऊतावला । सांची होवे सो बोलो साफ, सामल जो सुगणां ॥ मैं हूं ॥ ५ ॥ विध्याधर बोले सांची मैं कहुँ । दरसण करवा मैं श्री-जिनराज, येही बीमाणमें शीघ्र चलावता । लागी अभीलाषा मन में आज ॥सामल हे तिरीया ॥ किम ॥ ६ ॥ मेणरेहा की अरज ये साम लो । मोयं दरसण करादो चाल । याही वीन्ती मांनों मायरी । चरण भेटुं मैं दीनदयाल । सामलजो सुगणां मैंहुं ॥ ७ ॥ दरसण करता प्रसण तुझपेहुवो पहेलीलेचालूं भवन मुझार ॥ फेरपीछा आवांगासातमें । मतनाजाणोजी झूंठ लगार । सामल हे तिरीया ॥किम ॥ ८ ॥ धर्म्म करताढील न किजीये । जोधार्‍यो अपणे दिल

के माय। पहेली भेटोनींदीनां नाथनें । मनचाया कारज पुरणथाय ॥ सामल जोसुगणां मेंहुं ॥९॥ विध्याधर मांनीवात सतीतणी । पहेली दरसण करआवालार ॥ फेरलेजाऊं अपणांमहेलमांएसी लीनीदिलमांहींधार। सामल हे तिरिया ॥किम १०॥ ढाल भलीयानोंमींजाणजो । आवे दरसण करवानें लार। नँदराम कहे वेकर जोड़ने ।आगेचातुर सुणजो अधीकार॥ सामल जो सुगणां॥मैंहूँ ११॥

दो०—समोंय सरणके मायने बेठा श्रीजिनराय।
वारे जातकी परखदा,ज्ञानसुणेंचीतलाय १॥
विध्याधर अब आवीया,ले मेणरेहानेलार।
श्रीजिन चरणा भेटीया,मनमें हरषअपार २॥
जगवाहु देवता हुवा, चोथा स्वर्गमुझार।
तेनींसुणजो वारता, ध्यानधरी नरनार ३॥

ढालदसमीं ॥ (कोई चतुर वीचारा नें चेतजोजी) यादेसी ॥ देवता मनमाहेंचीन्तवेजी ॥ टेक ॥ देवलोकमे रिधी पामीयांजी । नाटक नांझणकार हो चतुरनर । दासदासी वहुसँप्रदाजी । देवगणां परीवारहो चतुरनर ॥ देवता ॥ १ ॥ रुप मिल्यो अधकोघणोजी । दिलमांहि करेहेवीचारहो चतुरनर । पुन्य जोग सुपदवी पामींयाजी।कांईदीनों में दानहो चतुरनर ॥ देवता ॥ २ ॥ मनमाहे ज्ञान वीचारीयोजी । देख्यो पुरव भव आपहो चतरन्नर । नाम जगवाहु पहलीम्हायरोजी । राणीथी मेणरयानारहो चतुरनर ॥ देवता ॥३॥ नगरी सुदरसणमांयनेजी । बंदवमणी रथरायहो चतुरनर । कुँवरचन्द्र जस म्हायरोजी । येसारोही परवारहो चतुरनर ॥ देवता ॥ ४ ॥ बंदवतो मुझनें मारीयोजी । सतीपे धरीहे कुद्रष्टहो चतुरनर

वीखीयाके वसराजा होगयोजी। तीणकारण लुटीयाछे प्राणहो चतुरनर ॥ देवता ॥ ५ ॥ बंदवकाम जुगतोनां कियोजी। पापनां फल भुगत्या आपहो चतुरनर। हाथ कछुभी आयो नहींजी। प्राण समारीगयो नर्कमें चतुरनर देवता ॥ ६ ॥ मेणरेहानो ऊपकारहेजी। अन्त समेदीनों साजहो चतुरनर। त्याग कराया भलीरीतकाजी।म्हारोसिरमोटो ऊपकारहो चतुरनर देवता ॥७॥ मेणरेहातो गुरणीम्हायरीजी। तिण प्रसादेपाई रिधहो चतुरनर ॥ कठेरवेछेग्रामोटी सतीजी। दिलमाहें कीनोजी वीचारहो चतुरनर ॥ देवता ॥ ८ ॥ ज्ञानमें देखीनीज नारनेजी। मेणरयासती आपहो चतुरनर ॥ समोयसरणमां-होदीपतीजी श्रीजिन चरणांके मायहो चतुरनर देवता ॥ ९ ॥ देवता आवेतीहांचालनेजी।

आगेसुणो अधीकारहो चतुरनर । ढालभली या दसमीं जाणजोजी । नँद कहेवेकर जोड़ने चतुर-नर ॥ देवता ॥ १० ॥

दोहा—देवतीहां चली आवीयो, जहां श्रीजिनराय ।
मेणरेहाके कारणे, दरसणकी दिलमांय ॥ १ ॥
भगवत चरणां भेटीया, बेकर जोड़ी अँग ।
मेणरेहापे आवीयो, दिलमें बड़ी उमँग ॥ २ ॥

॥ ढाल इग्यारमीं ॥ (श्रीमुनीसोभूतसायबा)

यादेसी ॥ देवतामनमांहें चीन्तवे ॥ टेक ॥ मेणरेहाकनें आवीयो । हाथजोड़ी सुरसीस नमाय के । धनसती आपमोंये तारीयो । परखदामांयेत नां गुणगायके ॥ देवता ॥ १ ॥ पुरवभवतणी गुरणी । अन्त समें मुझ दीनोछे साजके । भवसा-गरमांहीं डूबतां । बायं पकड़ी म्हारी राखीछे लाजके ॥ देवता ॥ २ ॥ परखदा देखी अचरज करे ।

ासुर सागेदीखेछे गंवारके ॥ गृस्त तिरीयाके वरणांनमें । हाथ जोड़ी खड़ो सनमुख आपके ॥ देवता ॥ ३ ॥ साधु सतीयांकेई बेठीया । तेनीतो भक्ती करेनीं लगारके । वीनो भांगीते थ्यां आवीयो । अचरज बात जाणी नरनारके ॥ देवता ॥ ४ श्रावक लोग पुछाकरी । हाथ जोड़ी खड़ा सनमुखआयके ॥ अहोप्रभु आप फूरमाव जो । संदये ऊपनी आज दिलमांयके ॥ देवता ॥ ५. सुरतणी जातयो दीखतो । भुंडो तो कामकी दोअणी वारके । चरण तीरिया तणेयेनमीं । ऐवीसँका पड़ी आपनी वारके ॥ देवता ॥ ६ ढाल भलीया इग्यारमीं । सुरतणो आगे चाले अधीकारके । नँदराम इमवीनवे । गरुचरणां मुझ नमस्कारके ॥ देवता ॥ ७ ॥

दोहा—श्रीजिनवरकहे सामलो, पुरवभवनी प्रीत ।
यागुरणीहे सुरतणी, पाल धर्म्मकी रीत ॥१॥
पुरवभवके मांयने, साज दियो तेनार ।
तीण सुंचरणां में नम्यों, संका नहीं लगार ॥२॥
हाथजोड़ श्रावक कहे महेर करो भगवन्त ।
किस्तरगुरणीसुरतणी, कहो सगलो वीरतंत ॥

ढाल बारमी ॥ (गौतमगुणधर वंदयें)

यादेसी ॥ श्रीजिनवर फूरमावता, सुण जो अधीकारश्री टेक ॥ नगरी सुदरसणमांयने, जग बाहुतेनो नाम । मणीरथ राजा राजवी, जग-बाहुना भ्रात ॥ श्रीजिन० ॥ १ ॥ राजकरे सुख चेनमां, देख्यो सती-नो रूप । कपट रच्यो तन मायनें । विषीया रस कुप ॥ श्रीजिन ॥२॥ मेणरेहा के कारणे, मारयो निज भ्रात । पाप तणा फल प्रगटिया, डसियो तेने सांप । श्री-

जिन० ॥ ३ ॥ मणिरथ राज गमावीयो, पहु-
च्यो नर्क मुझार । जगबाहु देवता हुवो, मेण-
रेहा ऊपगार ॥ श्री जिन० ॥ ४ ॥ प्रीतम नें
त्याग कराविया, लागो धर्म को साज । तिण
सुचवि देवता हुवो, आयो वँदण काज ॥ श्री
जिन० ॥ ५ ॥ मेणरेहा गुरणी हुई, धर्म करे
सँजोग । इम जाणीनें चेत जो, छोड़ो विषयीरा
भोग ॥ श्रीजिन० ॥ ६ ॥ बात ऐवीसव
सामली, करे गुण ग्राम । विद्याधर डर आण नें
गयो जिनठाम ॥ श्री जिन० ॥ ७ ॥ हाथ
जोड़ी सती इम कहे, सुण जो अरदास । पुत्र
मेल्यो वन मायनें, केसी पाइ हे त्रास ॥ श्री
जिन० ॥ ८ ॥ जिनवर कहे पुण्य जोग थे. वन
माहीं आयो भुप । मिथलानगरी को राजवी,
देख्यो रूप अनुप ॥ श्री जिन० ॥ ६ ॥ पदमो

त्तर राय जाणजो, लेगयो निजवाल । आनन्द सेमहेलां रहे, सुखिया भोपाल॥ श्रीजिन.॥१०॥
ढाल भलीया बारमी, सती आनन्द पाय । नन्दकहे वेकर जोड़ नें, गरुचरणां के मांय ॥ श्रीजिन० ॥ ११ ॥

दोहा–हाथजोड़ सतीइमकहे, तारो ग़रीबनवाज ।
मैं तो सँजम आदरुं, रहेसीलकी लाज॥ १ ॥
जिनवरकहे सुखहोयसो,ढील न करोलगार ।
बित्यो अवसरनां मिले,लीजो दिलमेधार॥ २
मेणरेहासँजमलियो, छोड्यासबही फँद ।
जिनवर चरणां भेटिया हुवासकलआनँद॥ ३

॥ ढाल तेरमीं (राजवीयानेराज पीयारो)
॥ यादेसी ॥ मेणरेहाती सँजमपाले ॥ टेक ॥
गुरणी बड़ीसती चनँणवाला । सहेस छतीस सिरदारोजी । मेणरेहा अति वल्लभकारी । वीछरत

नग्र सुझारोजी ॥ मेणरेहा ॥ १ ॥ पँचमहा वृतपालत सुधमन । ज्ञान भणे हीतकारीजी ॥ सुमत गुपत सुधाकिरीया पालत । ते चरणां वलिहारी जी ॥ मेण० ॥ २ ॥ ऊगृ विहार करे गुरणी सँग । धर्म्म दीपावेया भारी जी ॥ कहां लग मैं गुणगाऊँ सती का । सीयल सिरोमण नारी जी ॥ मेण० ॥ ३ ॥ पुत्र दोई निजराज करत हे । तेनो सुणोअधीकारो जी ॥ चन्द्रजस राजा नीज नगरी में । नमीय कुँवर नृप न्यारो जी ॥ मेण० ॥ ४ ॥ दोनों भाई के झगड़ो जो लागो । भो:मीं तणो अतीभारी जी । समझायां समझे नहीं दोनों । सज सगराम की त्यारी जी मेण० ॥ ५ ॥ दोनु राजा सज सन्याले आया डेरा किया वनमाहीं जी । वातसुणी मेणरेह सतीनें । मनमाहीं अचरज पाईजी ॥ मेण० ॥६

काम उठायो हे अन्धरथकेरो । मानव की दया आई जी । दोनोंहीं राजा को में समझाऊं । बात भली सुखदाई जी ॥ मेण० ॥ ७ ॥ अज्ञा लीनी निज गुरणी की । हे मोटोउपकारो जी । मेजाऊँ हितकर समझाऊं । प्राण बचे नरनारोजी ॥ मेण ॥ ८ ॥ ढालभली या तेरमीजाणो । मेणरेहा सती आवेजी । नँदकहे गरुदेवप्रसादे । चरणामें चीतलगावेजी । मेण ॥ ९ ॥

दोहा—सतीमेणरेहा गई, लेयसाध्व्यां सात ।
नमीय कुँवर वंदणांकरी, दोनो जोड़ीहाथ॥१
राजाकहे पधारजो, कृपा कीदी आज ।
भात पाणी लोलुजतो, आपधर्मकीजहाज २
सतीकहे सुणराजवी, अवसर देख वीचार ।
झगड़ो किमकरमांडियो, थोड़ा जीतबकार॥३
राजा कहे तुमसाभलो, भोमी लेई दवाय ।

चन्द्रजसमानें नहीं, किसतर छोड़ीजाय॥
बोलमरमका बोलतो, करुं सबुरीकेम।
लेसन्यां झगड़ो लडूं, योराजा को नेम॥

॥ ढालचवदमी ॥ (महेलांमेंबैठीहोराणीकमलावती यादेसी ॥ सामलरे जाया, झगड़ो नहीं कीजे वँदवथायरो ॥ टेक ॥ में तो समझाया आई तुझ मणी। मेणरेहा हे म्हारो नाम। तुजको वन-माहीं मेल्यो अकेलो। पुण्य आया जी थारा काम सामलरे जाया॥ झगड़ो ॥ १ ॥ राजा कहे तुम सुणजो महासती। भला दरसण दीना मुझे आय। माता नजरयां सुमें देखी नहीं। हरष वध्यो अतिआनन्द पाय ॥ सामल जो माता में नहीं जाणुंजी अणी बात में ॥ टेक दूसरी ॥ २ ॥ चन्द्रजस मेल्यो निज महेल में। निकल कर चाली जंगल मांय। कर्म उदैतो मारे आ-

विया ॥ भगवत् कर दीनी मुजपर साय। सामलरे जाया ॥ झगड़ो ॥ ३ ॥ माता का वचन सुण्या अती राजवी। नेणामेंचाली जलनी धार॥ कष्टसया तुम जरणी मांयरी। पुन्य उदै दियो संजम भार ॥ सामल जो माता ॥ में नहीं॥४॥ जेष्ट चन्द्र जस भाई थायरो। तिणसुं कीजेनर माइलाल ॥ कठी न वचन नहीं मुख सुं बोलिये। झगड़ों कियां सुं बुरा हवाल। सामलरे जाया ॥ झगड़ो ॥ ५ ॥ वचन सुण्यां में गुरणी आपका। सांची लीनी हे दिलमें धार। हुक्कम हजुरी सिरके ऊपरमें नहीं बोलु गाजरा लगार॥ सामल जो माता ॥ में नहीं ॥ ६ ॥ मेणरे हासम जाकर चालती। कुँवर ने दीया हे वीस वास ॥ चन्द्र जस राजातीहां बेठीया। सती आइ हे तीण के पास ॥ सामलरे जाया ॥ झ-

गडो ॥ ७ ॥ ढाल भली या जाणो चवदमीं ।
माता कुँवर के मिलणे होय । नंदराम कहे
जोडने ॥ दीजोसुख संपत प्रभुजी मोय । साम
लहे माता ॥ में नही ॥ ८ ॥

दोहा–मेणरेहा आई तीहां, चन्द्र जस दरबार ।
नृपउठि बँदणा करी; धनजुग में अणगार॥
सुरत सेंदी लागती, किसतर आयाचाल।
नाम बताओ आपको, सभीकहो अहवाल२॥
मेणरेहा मुजनाम हे, समझा वानीज भ्रात ।
झगड़ो आपसमें कियो, सुणो हमारीवात ३॥
इसकारण में आवती, सुणजो म्हारा वेण ।
झगड़ो मतनां थेंकरो, मानले वोयाकेण ४॥

ढाल पंदरमी ॥

(पलीपत चेतजो लख जगतनीं रचनाअह)

या देसी सती तुम सामलो, अबी बातन जाणुं लगार ॥ सती ॥ टेक ॥ में नहीं बँद वजाण तो, तीण सुंयो झगड़ो होय । चटकचड़ी तीण कारणे माता, सांच ॥ बताऊं तोय ॥ सतीतुम १॥ चँद्र जसराजा कहे मेंतो, मिलवा जाऊं निज भ्रात । मनकी सँदये मेटदी, म्हारी सुणजो सः तियां बात ॥ सती ॥ २ ॥ राजा ऊठ मीलवा चालीयाजी, नमीय कुँवर के पास । कुँवर उठी सामो आवीया हाजर में चरणों का दास वह वम्हारा सामलो मुजे माफी देवोनी आय ॥ में अपराध कियो सहीजी, माफकरो सरकार । माताआई समजावीया । देखो बहोत कियो उपगार ॥ बंदव ॥ ४ ॥ प्रीत हुई दोनोंके अती जी, महेल चाल्या निजठाम । हाथी के ऊपर वैठीया, सँगलीनी फौज तमाम ॥ बंदव॥ ५ ॥

हरष वधावा गावियाजी, घरघर मँगलाचार।
राजसभा के मांयने, सब हरष रया नरनार॥
॥ वँदव ॥ ६ ॥ मेणरेहा सती आवीया, नीज-
गुरणी पासे चाल। सबवीर तँत सुनावियां,
दोई राजाका अहेवाल ॥ वंदव ॥ ७ ॥ गुरणी
सुण राजी हुवाजी, भलो कियो ऊपकार। धन
सतियां में सीरोमणी, गुण ग्राम करे नरनार॥
॥ वंदव ॥ ८ ॥ ढाल कही पँदरमी सही, दोनों
भाई को मींत्राचार। नँदराम ईम वीनवे, आगे
ामल जो अधीकार, वँदव ॥ ९ ॥
ोहा–राजारहे आनँद में, अपणे अपणे ठाम।
प्रीतलगी अति प्रेमसुं, करेसवी गुणग्राम १॥
राण्या अेकसो आठहे, निज महलांके मांय।
सुखभोगवे संसारनां; कमीकछुभी नाय २॥

ढालसोरमी ॥

(अणी आहु का टुटा नें सांदो कोई नहीं जी)
यादेसी । चँद्र जस राजा संजय आदऱ्योजी
॥ टेक ॥ नमीये रायनें आप बुलावीयाजी । में
ले सां जी संजम भाररे ॥ राजसंभालो वँदव
मांयराजी । यो हे संसार असाररे ॥ चँद्र ॥ १ ॥
नमी ये कुंवर कहे सामलोजी । क्यों तुम जावो
मुज छोड़रे ॥ राज समालो सारो आपको जी ।
छीनमें तो प्रीत मतनां तोड़रे ॥ चँद्र ॥ २ ॥
चंद्रजस राजा कहे सांमलो जी । राजकरो नीं
दोइ ठामरे ॥ में तो संजम अब लेवसांजी ।
राजरिधी सुं नहींकामरे चँद्र ॥ ३ ॥ हरष
धरी नेंऊतछव अती किया जी संग हुवा केई नर-
नाररे। चालीअसवारी निजबाग में जी मन में

तो हरष अपाररे ॥ ॥ चँद्र ॥ पंचमहा वृत लीदा
राजवीजी। करता उग्र विहाररे। केइ दिना लग संजम
पालियो जी। पहोता मोक्ष मुझाररे ॥ चँद्र। । ५ ॥
नतीय राजाभी संजम लेयने जी । सान्या आ-
तम काजरे ॥ अनँत सुखामें वीराजीयाजी ।
आप धरम की जहाजरे ॥ चँद ॥ ६ ॥ मेण-
रेहा भी संजम पालनेजी । पहोची मोक्ष मु-
झाररे ॥ जनम मरण दुखमेटीया जी । सामल
जो नरनाररे ॥ चँद ॥ ७ ॥ ढालकही छेया
सोरमी जी । सतीना कीना छेत्रणारे । धनधन
ते जीन वंदिये सील सिरोमण जाणरे ॥ चँद्र ८॥
इमजाणी में सील अराध जो जी । सील सुं
सीव सुख पायरे ॥ नँदराम कहे वेकर जोड़ने
जी । गरुचरणं सीस नमायरे ॥ चँद्र ॥ ९ ॥
संमत ऊगणीसें गुणात्तरसालमंजी । नीमचनगर

मुझारे । ढाल जोडीया मेणरेहातणीजी । मुझ मुझवुधीके अनुसाररे ॥ चँद्र ॥ १० ॥ हाथजो- डी नें करु वीनतीजी । चाकरचरणां को दासरे महेरकरोनींमुजऊपरेजी । दीजो प्रभुजी सुखवा- सरे ॥ चँद्र ॥ ११ ॥

गज़लक़व्वाली ।

श्रीमन्दर प्रभुमेरीअरजपे गोरतोकीजे । वडी खुवाहीस हेदरसन की कृपा करके बुलालीजे । टेक॥ महावदी क्षेत्रके मांही बीराजेहो मेरेस्वामीं रहेता हुं भरथके बीच यहांसे अरजमानींजे ॥ श्रीमन्दर ॥ १ ॥ नहीं ताकत हेआनें की बीकट रस्ताहे परबतमें । केई नदीयांपडी गहेरी गरीबीपे महेरकीजे ॥ श्रीमन्दर ॥ २ ॥ नहीं हाथी न घोडा बेल चलेनहीं रेलगाड़ीठेटा

में आनेसे बड़ालाचार सुखीमाण भूकादीजे ॥ श्रीमन्दर ॥ ३ ॥ करमोंकीबजेसे ये बड़ी कमजोरहेकाया । उमर थोडीहे चलनां बहोत महेर कर के दीखादीजे ॥ श्रीमन्दर ॥ ४ ॥ नलन्धी वेकरे मुजकोन कोई ज्ञानकी ताकत । हुमजबुर आने से गरीपर वरदया कीजे ॥ श्रीमन्दर ५ मिस्लदरबारके कदमों में हजुरी हुकम का प्यासा॥ अर्जयेनंद कीमानो जनम मृण दुखमिटा दीजे ॥ श्रीमन्दर ॥ ६ ॥ इती श्री ॥

सवैया (चाल) सुन्दर विलास की ॥

नारी की संगनीवारदे मुरख नार पराई अती दुखदाई । रावण राय हुवा बलवंत ये नारी की संग कुबुद्धि उपाई । सिता सती को लायो छलके तिहां लंका के बाग में आन विठाई ॥ रावण तो ललचाय रयो मुख से

बोलत बात खटाई ॥ १॥ सीता सती कहे बात भली सुण लंकपती तुझ को समझाऊं । मैं हूं सती अेक पतीव्रता सुणले नृप मूरख हात न आऊं जो तु अनीतिकी बात करे मेरा सत्य के ऊपर प्राण गमाऊं । मेरे पती रघुबीर बड़े जिनकी चरणां नित्य ध्यान लगाऊं ॥ २ ॥ रावणराय विचार कियो कुछ धीर पसे समता रस पावे । राण्यां मांही पठ नार करूं अब लंकाको छोड़ कहां पर जावे ॥ लछमन राम बसे बन मांही तो लंका में आकर कोण लेजावे ॥रावण के मद छाय रयो कवी नंद कहे कड़वे फलपावे॥ लछमन राम विचार करे कछु सीता की खबर जरा नहीं पाई । जोधा जती हनुमन्त बली ताको सीता की बात सबी दरसाई । विध्याको

सुमृत आप चले गड़ लंका में जाकर खोज लगाई ॥ बाग मांही हनुमंत गये सुख आनन्द की सब बात सुनाई ॥ ४ ॥ सीता सती अती हरप भयो देखी सुंद्री का रामतर्ण सुख पाया। बात करी सुख संपत की सबही अपणा बीर तंत सुनाया । चुडामणी हनुमंत लेई सब लंका के मांहीं चरित्र दिखाया ॥ केकंदा नगरी में आवत है हनुमंत करे सब काम सवाया ॥ ५॥ राम लक्ष्मण सोच करे हनुमंत को देख अती सुख पाई । बात भली सब पुछत हे तब चूडामणी हनुमंत दिखाई । ले दल बादल आप सवी गडलंका के ऊपर कीनी चढाई ॥ बाल सुग्रीव चडे संग में हनुमंत लिया सरणां रघुराई६ सोने की लंका है इन्द्र पुरी सम रावण के अ-

भिमान सवाया केई हुवा संग राम जहां पर ये बलिया सिर चढ़ कर आया। रावण राज गमाय दियो और प्राण गये कुछ हाथ न आया। नंद कहे सुण त्याग करो पर नारी की संगत ये फल पाया ॥ ७ ॥ इती श्री ॥

गज़लदादरा ॥

सुनो अजीज प्यारे सब वतन को जाओगे सुकृत काला भनां लिया फिर क्या बताओगे॥ ॥ टेक ॥ येरत्न हाथ जो मिला चिन्तामणी समान । गफलत में सोरहोगे तो नाहक गमाओगे ॥ सुनो ॥ १ ॥ मोहके नसे में जिन्दगी करी तमाम । आखीर का वक्त आयगा फिर क्या बताओगे ॥ सुनो ॥ २ ॥ संसार है असार मुसाफिर ये घर नहीं। पुरी मियाद होचुकेपर

भवसीधाओगे ॥ सुनो ॥ ३ ॥चलनें की वक्त अेकदिन आयेगी कभी । धनमाल खजाना सबी ये छोड़ जाओगे ॥ सुनो ॥ ४ ॥ निज धर्म सार संसार संगये चलने की चीज़ है । सेवन किये परलोक में आराम पाओगे ॥सुनो ॥ ५ ॥ क्रोध मान मेट कर जिन राज का भ-जन । सुरलोक में आनंद का डंका बजाओगे ॥ सुनो ॥ ६ ॥ गुरुदेव के प्रसाद नंदराम की अरज । दिल में रखोय कीन जो मुराद पाओ-गे ॥ सुनो ॥ ७ ॥ ॥ इति ॥

॥ दादराशेरखानी ॥

मेरे नेमपतिमको मनायलेना । मेरे । गिर-नारीका रसिया को जायकेनां ॥ टेक ॥ आये थे आप व्यावणों लेकर बरातको । तो रनसे रथको फेरिया मानीं न बातको । तोरी सामरी

नेनोंमे जल
तोरत दीखायदेनां मेरे नेम ॥ १ ॥ नेनोंमे जल
बरसरहा देखो जरा इधर । मुजको अकेली
छोड़के जाओ पीया किधर ॥ तुम आओ महेलों
तरसे नेनां ॥ मेरे नेम ॥ २ सखीयां सबी
समझावती बातों करे अनेक । प्रीतम मेरे हिरदे
बसो दरसन देओ चनेक ॥ शीवरमणोने तुमको
येदी सेनां ॥ मेरे नेम ॥ ३ ॥ धनमाल सबही
छोड़के संजमतो लीनां धार । दिलमें मेरेप्रभु
बसो सुणजो मेरी पुकार जिन चरणों में नीस
दिन हेरेनां ॥ मेरेनेम ॥ ४ ॥ मैं हाथजोड़के
खड़ा सुनलो मेरी अरअ । ग्रेनंदराम बीन वे
दफतरमें करो दरज ॥ भवसागरसे प्रभुजी तीरा
देनां ॥ मेरेनेम ॥ ५ ॥ इतीश्री ॥

सवैया (चाल) सुन्दर बिलासकी

अरीहंतनमुं श्रीसीधनमुं, नाचारजनमुं चरणां

हीतकारी । फेरनमुं उपध्याय गुनीजन, साधुजी पंचमहा बृतधारी । पांचुंहींपद बड़े जुगमे सुमरन कियां मिले संपत सारी । ज्ञानीको ज्ञान अनंत कयो अेक केवल ज्ञानकी हेबालिहारी ॥ १ ॥ पुन्य उदैकर जनम लियो, और पुन्य उदै से मिली सबमाया । पुन्य उदैकर राजलियो, उदै सुखसंपत पाया ॥ पुन्य उदैमाल भद्रतणां, जब सेणक राजवी देखण आया । पुन्य उदै सब जोग मिले, कवी नंद कहे करो पुन्य सवाया ॥२॥ धर्मपदारथ सारकयो दुनियां बिच दुसराहे नहीं कोई । जीव दया बीन धर्म नहीं देखो ग्रन्थ पुराण लेवो सब जोई दया नहीं त्रास जीवन की तब युंही मिथ्या मत बात डबोई ॥ राग और द्वेस में लीन रहे कवी नंद कहे किरिया सब खोई ॥ ३ ॥ मानव को भवनीठ मिल्यो,

अब यत्न करो मत अेल गमावो। रत्न चिन्ता मणी तेह क्यो मतहार इसे पड़सी पछतावो ये अबसर फिर नांय मिले, कर धर्म्म सदा गरु देव सुनायो दान दया और इन्द्री दमो, यही पन्थ खरो महाबीर बतायो ॥ ४ ॥ संगत अेसी करो तुम सजन, पाप हटे और पुन्य बढ़ावे। साधु की संगति हैगी भली सुध ज्ञान देवे और धर्म्म बतावे। कोड़ी भी एक मांगत नाहीं युंहीं मुझको उपदेश सुनावें। चेत सके तो चेत चतुरनर ये अवसर फिर दुलर्भ पावे ॥ ५ ॥ साधु बड़े गुनवंत कहे और साधु की बाणी लग आति प्यारी। मोक्ष तणो दिखलावत मारग जो होवे पंचमहाव्रत धारी ॥ कुड़ नहीं लवलेस जरा, सब जीवन के सिर पर उपकारी। अेसे गरु साधु तारत हे, कबी नंद कहे जिनकी बलिहारी ॥ ६ ॥ साधु तो नाम धरावत है केई

जोगी जती भस्मी अंगधारी । कानफड़ा मुद्रा लटकावत, ज्ञान नहीं कन्द मूल अहारी । और केई मत देखलेवो, साधु नाम धराय रखे घर नारी । ऐसे गरु नहीं तारत है, कवी नंद कहे होवे जन्म खुवारी ॥ ७ ॥ साधुही साधु बतावत है, फिर साधुको को भेद जरा नहीं पायो । मन को तो मेल मिट्यो नहीं मुरख, ऊपर खाली यो स्वांग बणायो । नाम धरायो सु सीद्धी नहीं, इस में तो केई परपंच बतायो । साधु हो काम करे घरका, कवी नंद कहे यूँही जन्म गमायो ॥ ८ ॥ इतीश्री ॥

जय जय श्री नन्द्र । जय जय जिनन्द्र ।
जय जय जिनन्द्र ॥

कल्याणँ मंगलं शुभम् ।

प्राक्कथन ।

—:o:—

प्रिय पाठक ! प्राक्कथन लिखने की प्रचलित प्रथा का पालन
रना परमावश्यक प्रतीत होता है। तिस पर इस पुस्तिका
ी प्रवीण-प्रणयिता का प्रस्ताव भी है कि मैं इसके पूर्व
कथन में दो चार शब्द लिखूं। अतः "श्रीमतीजी" की
प्राज्ञा को शिरोधार्य करता हुआ इस पुस्तिका का दिग्दर्शन-
मात्र कराता हूं।

हिन्दूजाति की दीन हीन अवस्था देखते हुये और हिन्दू-
समाज को विधर्मियों के पांव की गेंद (फुटबॉल) बना हुआ
देखकर कौन कठोरहृदय व्यक्ति होगा जिसके हृदय से अफ-
सोस भरी आह न निकल पड़े। यह कहना अत्युक्ति न होगा
कि वर्तमान में हिन्दू-समाज का जीवित रहना भी विधर्मियों
की दया पर ही निर्भर है किन्तु इसका दोष हम अन्य समाजों
को देने के अधिकारी नहीं क्योंकि हमारे समाज की दशा ठीक
उस मूर्ख के समान हो रही है जो जिस डाली पर बैठा हो

उसी को काटे, हिन्दू-समाज ने केवल डाली ही को नहीं काटा प्रत्युत अछूतों से घृणा कर के अपने पावों को काट कर पंगु बन बैठा, अबलाओं पर अत्याचार करके मनमाना स्वार्थपूर्ण उनके लिये कानून बना के आधे अंग से बेसुध हो गया, परस्पर में धार्मिक झमेलों को इतना बढ़ाया कि एक एक के "ठाकुरजी" भी जुदे २ मान लिये गये, सामाजिक रीति रस्म और रहन सहन को बेतरह बिगाड़ कर अपने ऊपर भयंकर पर्वत गिरा लिया जिसके दबाव से वापिस उठ कर खड़ा होना कठिन हो गया, इत्यादि समाज की करुणाजनक अवस्था को देखते हुये भी हमारे धर्मान्ध धर्माचार्यों की आंखें नहीं खुलीं।

विचार का स्थल है कि इस प्रकार हिन्दू-समाज में अनेकानेक अत्याचार, अनाचार, व्यभिचार और भ्रूणहत्यायें तथा दश बारह वर्ष की बालविधवाओं का करुणाजनक हृदयभेदी हृदय-क्रन्दन निरन्तर होते रहने पर भी क्या हिन्दू "हिन्दू" कहलाने के अधिकारी रह सकते हैं? क्या हिन्दू-धर्म की पद्धति यही है कि लाखों की संख्या में बालवैधव्य के रौरव नरक में पड़ी हुई अपनी बहिनों को द्वितीय विवाह की अनधिकारिणी बता कर, व उनके ईश्वर-प्रदत्त प्राकृतिक

अधिकारों का गला घोंट धर्म की डुगडुगी बजाई जाय और इन अत्याचारों से तंग आकर अबला हिन्दू-समाज में अपने टिकने के लिये कहीं आश्रय न देखकर विधर्मियों की शरण में चली जायं और हिन्दू-संतान हाथ पर हाथ धरे शांत बैठी हुई धर्म की दुहाई देती रहे, कितनी लज्जा की बात है!!!

हिन्दुओ! हिन्दू-धर्म के नाविको! इस दुःखसागर में पड़ी हुई हिन्दू-अबलाओं की नाव को पार लगाना चाहते हो तो अपनी पक्षपातरहित दृष्टि से इस दुःखसागर में पड़े हुये हिन्दू-धर्म को, हिन्दू-समाज को संसार से लुप्त करने वाले अगणित अत्याचार, अनाचार एवं अकरणीय कर्मरूपी मत्स्यों को नियोग और पुनर्विवाह रूपी शस्त्रों द्वारा विच्छेद कर के अधबीच में डांवा-डोल होती हुई नाव को पार लगावें नहीं तो संसार में आप अपना मुंह दिखाने योग्य नहीं समझे जायंगे। अब भी समय है। धर्मपूर्ण नियोग और पुनर्विवाह की व्यवस्था देकर हिन्दू-समाज में अबलाओं के दुःखपूर्ण रुदन को शांत करो और अछूतों का आदर करके हिन्दू-समाज को सबल बना कर अपना मुख उज्ज्वल करओ वरना क्या होगा आपको विदित है या नहीं:——

ख़ाक हो जायगा जल भुनके फ़लक आहों से।
इस ज़मीं को डुबो देंगे फ़कत ये आंसू ॥

इन दुःख भरे शब्दों पर ध्यान देकर अपने इस हठधर्म को छोड़ो कि " धर्मशास्त्रों में विधवाविवाह का निषेध है " प्रथम तो धर्मशास्त्रकार इतने पक्षपाती नहीं कि रँडुओं और बुड्ढों को सैकड़ों विवाहों की आज्ञा देदें और अबलाओं के लिये प्राकृतिक वासनाओं की पूर्ति का रास्ता बन्द करदें, ऐसा कदापि नहीं हो सकता, किन्तु खैर, यदि निषेध भी मान लें तो कृपा कर बतलाइये कि वर्तमान में आपके जन्म से लेकर मरण-पर्य्यन्त के संस्कार व सामाजिक व्यवहार व ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास आश्रम, धर्म व वर्णाश्रमधर्म सब कुछ जितना हो रहा है, क्या कोई कह सकता है कि यह सब शास्त्रानुकूल ही हो रहा है ? जब ये सब व्यवसाय केवल अपनी स्वार्थपरता को लक्ष्य में रख कर अपनी सुविधानुसार करना धर्म मान लिया गया है तो इन अबलाओं ने क्या अन्याय किया है कि वर्तमान की बढ़ी हुई विलास-प्रियता के ज़माने में अपने प्राकृतिक वेगों को रोकने के लिये व्यर्थ बाध्य की जायँ। क्या कभी ऐसा हो सकता है ? किन्तु स्वार्थता बड़ी

बुरी बला है कि अपने लिये मनमाना शास्त्र और धर्म घड़ लिया जाय और अबलाओं का प्रश्न आते ही धर्म की दुहाई दी जाय यह तो वही मसल हुई कि:—

" मीठा २ गप्प और कड़ुआ कड़ुआ थू "

अस्तु, इन्हीं उपरोक्त मार्मिक विचारों को ही पुस्तकप्रणयिता ने इस छोटीसी पुस्तक में व्यक्त किया है। अतः मैं हिन्दूसमाज के सन्मुख अति आदरभाव से निवेदन करता हूं कि प्रत्येक हिन्दू-सन्तान इन विचारों को हृदयंगम कर पक्षपात की दृष्टि से दूर हो कर खूब मनन करें तभी हिन्दू-समाज की भलाई हो सकती है नहीं तो याद रक्खो कि हिन्दू-समाज के अत्याचार से अन्त्यज भाइयों के लिये मन्दिरों के दरवाजे वन्द हैं तो मस्जिद और गिर्ज़ों के विशाल फाटक उनका हर वक़्त स्वागत करने के लिये खुले हुये हैं और इसी तरह यदि समाज विधवाओं के हृदयवेधक कष्टों को देखता हुवा, समाज को भस्म कर देने वाली आहों को सुनता हुवा, उन्हें पददलित करने, ठोकरें मारने और घर से बाहर निकाल कुकर्म में प्रवृत्त करने को आरूढ़ हैं तो " मिसन " और " वैश्याओं " के भई

तथा विधर्मी लोग उन्हें हृदय से लगाने और सादर अपने घरों में स्थान देने के लिये तैयार हैं। अब देखें हिन्दू अपने हिन्दूत्व को किस दर्जे तक पहुंचाने की चेष्टा करते हैं।

पाठक ! यदि आप लोगों ने इसे पढ़ कर इसमें की वास्तविक मार्मिक बातों पर ध्यान देते हुये हिन्दू-समाज के पुनः उत्थान पर कुछ भी विचार किया तो मैं इस पुस्तिका की "लेखिका" का समस्त श्रम सफल समझूंगा।

सब अनर्थ का मूल बस, विधवाओं की आह है।
ध्यान इधर भी दें जिन्हें, देशोन्नति की चाह है॥

विनीत-
"बृजरत्न"
बीकानेर

ग़ज़ल ।

हमसी भी बुरी होगी न तक़दीर किसी की,
देखी न सुनी होगी यह तहक़ीर किसी की ।
लुटवाता है महमूद कभी आन के मन्दिर,
खिंचवाता है यहां खाल जहांगीर किसी की ॥
दीवारों में चुनवाये गये कौम के बच्चे,
छाती में किसी के हैं छुरा तीर किसी की ।
दाखिल हैं कभी हल्के गुलामी में किसी की,
पहने हैं कभी पांव में जंजीर किसी की ॥
मुग़लों के ज़माने हुआ ऐसा भी अक्सर,
हमदार पै खींचे गये तकसीर किसी की ।
मिट्टी में मिलाता है हमें आन के कोई,
बनती है इसी ख़ाक से अकसीर किसी की ॥
जलती थी चिताओं में यहां देवियां अक्सर,
हम आग में फुंकती हैं ख़ता और किसी की ।
ए चारहगारो बहरे खुदा अब तो बचालो,
देखो तो जो चल सकती है तदबीर किसी की ॥

——:o:——

अबला-आह

अर्थात्—

अबलाओं का करुणा-क्रन्दन।

खूब गहरा विचार करना होगा। जल्दी करने से काम नहीं चलेगा। यह विषय साधारण नहीं है, आत्मतत्व की तरह बड़ा ही गहन और क्लिष्ट है। जिस प्रकार वेदान्त फिलोसफी में अन्तःकरण की शुद्धि द्वारा ज्ञान प्राप्त होकर मनुष्य मुक्ति को प्राप्त होता है, ठीक उसी तरह इस विषय में भी सद्विवेक से अन्तःकरण की शुद्धि द्वारा प्रकृति के अटल नियमों को हृदयङ्गम करता हुआ, पक्षपात से रहित स्त्री पुरुषों के परस्पर के तारतम्य को स्थायी रखता हुआ निपुणता दिखा सकता है; अर्थात् हिन्दू जाति की डूबती हुई इस जीर्ण नाव में हम बैठी हुई और करुणाक्रन्दन करती हुई अबलाओं का बेड़ा पार लगाने में समर्थ हो सकता है।

तुम्हें हक्क नहीं है। तुम्हारे लिये ईश्वर की आज्ञा नहीं है। तुम्हारे भाग्य में ऐसा ही बदा था। अब तो तुम चिरदुःखिनी बनी रहो। महामुनि शुकदेवजी, जड़ भरतजी तथा पूज्य भीष्मपितामह की तरह "जिनके नाम शास्त्रों में गिनती ही के आते हैं", तुम भी सबकी सब आजन्म ब्रह्मचारिणी बनी रहो और दर्शन, तीर्थ, व्रत आदि करके अपनी प्राकृतिक वासनाओं का दमन करो; इत्यादि हास्यास्पद, ऊपरी दिखाऊ ढोंग की बातें अब समय के उपयुक्त नहीं हैं। यह समय जागृति का है। हिन्दू-जाति की दीन-हीन दशा को चरम-चक्षु से नहीं, हृदय-चक्षु से निहारो और उस पर तरस खाओ। यदि तुम ईश्वर के मानने वाले हो तो उसके नियमों को समझो और उनका पालन करो। यदि ईश्वर को नहीं मानते और नेचर (Nature) याने क़ुदरत पर ही अवलम्बित हो तो क़ुदरत यह नहीं कहती कि जिस घर में पानी न हो उस घर वालों को प्यास ही न लगे। यदि आप लोग हिन्दू-जाति के हितैषी हैं और उसे सबल बनाना चाहते हैं तो अबलाओं के प्रति अपने वज्रसमान विचारों को त्याग दो और हृदय पर हाथ धर कर सोचो कि प्रकृति-पदार्थों के सेवन में याने अन्न, जल, वायु, प्रकाश, शौच, निद्रा, भय, मैथुनादि के उपयोग में

स्त्रियों के हक़ किस प्रकार न्यून हो सकते हैं ? सोचिये, पुरुष तो एक वार नहीं इक्कीस वार विवाह कर सकता है, और स्त्रियां जिन्हें हथलेवे मात्र की छूत लगी है और पति का मुंह तक नहीं देखा है उन दुग्धमुहीं बालिकाओं के भी हक़ खतम हो जाते हैं और उन्हें कहा जाता है कि तुम्हें हक़ नहीं है, कितने खेद और लज्जा की वात है।

पिताओ! अब रही ईश्वर-आज्ञा की वात। उस के लिये निवेदन यह है कि जिन अबलाओं में प्रकृति के अटल सिद्धान्तानुसार कामवासना पुरुषों से अष्टगुणी अधिक व्याप्त है और जिन्होंने पति का सहवास-सुख प्राप्त नहीं किया है, ऐसी स्थिति में वह दयालु ईश्वर ऐसी कठोर एवं भयङ्कर अन्यायपूर्ण आज्ञा कदापि नहीं दे सकता। वह बड़ा कृपालु है, संसार में सर्वव्यापी और घट घट की जानने वाला है, उसके यहां अन्धेर या पोल नहीं।

भाग्य में ऐसा ही वदा था— यह मिथ्या आश्वासन सब के तो क्या मगर कहने वालों के भी दिमाग़ में बैठता नज़र नहीं आता। यदि भाग्य पर विश्वास होता तो एक बीबी के मरते ही चट दूसरी की तलाश नहीं की जाती। किन्तु

"पर-उपदेश कुशल बहुतेरे" वाली कहावत को चरितार्थ करने के लिये हृदयान्ध लोग हम सब अबलाओं को, जिनमें पुरुषों से आठगुणा कामोद्दीपन होता है, भाग्य पर अवलंबित रहने का मिथ्या उपदेश करते नहीं शरमाते। यह उपदेश ठीक उन्हीं निरंकुश, नरपिशाच, निर्दयों का है जो कहते हैं बिल्ली चूहों को मारती है तो मारने दो, कुत्ता कबूतर को पकड़ता है तो मत छुड़ावो, गौ आग में जलती है तो मत बचाओ, १२, १५, वर्ष की बालविधवा अपने माता पिता को रंग महल में आनन्द उड़ाते और रमण करते देख दिल मसोस कर खून के घूंट पीती और रोती हैं तो रोने दो, अन्न जल की व्यवस्था होते हुए भी स्वस्थ आश्रितों का मुंह बंद करदो और उन्हें कहदो कि तुम्हारे भाग्य में यही बदा है; कैसी नीच, स्वार्थपूर्ण और हृदयवेधी बातें हैं, जिन्हें कहते लज्जा को भी लज्जा आ जाय किन्तु इन धर्मध्वजियों के विचारों का वज्रपात अबलाओं पर से न टले !;

कहते हृदय कम्पायमान नहीं होता और कह डालते हैं कि चिरदुःखिनी बनी रहो, सच है हम चिरदुःखिनी ही नहीं घोर कलङ्किनी बनी हुई हैं, किन्तु तुम्हें दया नहीं, लज्जा नहीं,

ाति के पतन का ज़रा भी शोक नहीं। ये लाखों की संख्या
। हिन्दू-जाति के जो दुश्मन नज़र आ रहे हैं और आये दिन
हंदुओं पर जूते मारते हैं और अबलाओं की इज्ज़त लेते हैं
और बच्चों को कूओं में फेंक देते हैं या टांग पकड़ कर पत्थर
पर पछाड़ कर मार डालते हैं या जलती हुई आग की भट्टी में
झोंक देते हैं, माल लूट ले जाते हैं, घरों को फूंक देते हैं,
आपकी स्त्रियों को धर्मभ्रष्ट कर देते हैं और बीवियां बना कर
पड़ोस में बैठ जाते हैं, मन्दिरों और मूर्तियों पर मिटिया तेल
छिड़क कर आग लगा देते हैं, धर्मग्रन्थों को जला कर ख़ाक
कर देते हैं, इत्यादि बीभत्सकांड के कर्ता हमारे कलङ्किनी रहने
का ही दुष्परिणाम है या आपकी अबलाओं और अछूतों
के साथ की हुई दुष्टता का दण्ड है जो आपको अवश्यमेव
भोगना पड़ता है। हमें तो लाचार विधर्मियों की शरण में जाना
पड़ता है। प्यासा पानी की खोज़ करता ही है। और मिलने
पर पी लेता है, पीने के बाद घर पूछने की आवश्यकता नहीं,
क्योंकि तृषातुरता बड़ी बुरी बला है, यह जिसे लगती है वही
जानता है "जाके पैर न फटी बिवाई, वह क्या जाने पीर पराई"
किन्तु विधर्मियों की शरण हम अपनी खुशी से नहीं जातीं
वहां भी तुम्हारा ही अत्याचार हमें घसीट कर लेजाने में

सहायक होता है। यदि हम सवर्ण सम्बन्ध करती हैं तो मालूम पड़ने पर घरवाले लाठियां लेकर मारने को दौड़ते हैं और मनमानी गालियां—लुच्चीरांड, मालजादीरांड, कलङ्किनीरांड इत्यादि समझ सकते हो रांड को गाल में खांड का लेश ज़रा भी नहीं होता, देने में संकोच नहीं करते, न हृदय फोड़ते कि इन्हें रांड बनाकर घर में बिठाने के अपराधी हमी हैं। अतएव हम तुम्हारे इस ज़ुल्म से तंग आकर अपने घर वालों, पड़ोसियों और गली को छोड़ कर अनजाने अन्य स्थानों में जा फँसती हैं। ऐसे स्थानों में जाने से घर वालों की नाक कटने के बदले अठगुनी बढ़ जाती है जिससे वे लोग किसी प्रकार झगड़ा, टंटा, शोर, गुल व कोलाहल नहीं करते। जिससे हमारे दिन शान्ति से कटते हैं और दिनोंदिन उनसे मुहब्बत बढ़ जाती है। आखिर हमें उन्हीं की होकर रहना पड़ता है और वे लोग हमें पजामा पहना कर कानों में चांदी की बालियां पहना देते हैं और हमारा नाम भी बदल दिया जाता है। असली नाम के आगे बीबी शब्द जोड़कर संबोधन करते हैं जिससे हमारा हिन्दू-जाति से क़तई ताल्लुक टूट जाता है और बाद में हम बच्चा जनती हैं जो बड़े होकर हमारे साथ आपके किये हुए ज़ुल्मों का बदला चुकाते हैं। मगर खयाल

रक्खो उन बहिनों की निस्बत जो घर में बैठी हुई भ्रूणहत्याएँ करती हैं; विधर्मी होकर बच्चा जनना लाख दर्ज़े अच्छा है। क्योंकि प्रकृति का झमेला बड़ा बलवान् है, इससे बचना कोई आसान काम नहीं है। इधर घर वालों की नाक का फिकर, उधर प्रकृति का दबाव, दोनों के झमेले में आखिर प्रकृति ही की विजय होती है। "गिरिनदीवेगोपमं यौवनम्" यह युवा अवस्था का वेग उस पहाड़ से उतरने वाली नदी के समान है जिस के बहाव का रास्ता यदि उचित रूप से बना हुआ नहीं होता है तो उच्छृङ्खल रूप से बहने का रास्ता स्वतः बना लेती है, इसी सिद्धान्तानुसार वे घर में बैठी हुई युवावस्थाप्राप्त अबलाएँ बहुत सावधानी से छिपे २ अपना रास्ता ढूँढ लेती हैं। घर से बाहर निकलने का कुछ विशेष बन्धन होता है तो घर में आने जाने वालों से, नीचवृत्ति के देवर जेठों से, बराबरी के देवर जेठों के लड़कों से, भानजों से, पढ़ने के मिस मास्टरों से, कथा के मिस कथक्कड़ों से, इतने पेचाव के साथ सटपट करती हैं कि किसी को शक तक पैदा न हो। यदि इसी बीच कोई डूबती हुई नाव को तिनके के सहारे के समान बुढ़िया कुट्टिनी मिल जाती है तो अपना अहोभाग्य समझती हैं और उनके सहारे कुछ कमाई खोई के साथ

दूर २ का धारा मारती हैं। यदि अधिक धनाढ्य की बहू बेटी हो तो दूर जाने की आवश्यकता कम पड़ती है; उनकी मन्शा घर में ही पूरी हो जाती है। कई तरह के पुरुष, स्त्रियां घर में आती जाती हैं और उनकी हाज़री भरती हैं जिनके ज़रिये से उनका काम आसानी से पेश चढ़ जाता है। अन्यथा सईस, कोचमेन, रसोइये तथा तेड़े सन्देशे करने वाले नौकर आदि उनके हृदयवल्लभ होते ही हैं। ऐसी स्त्रियां माल लुटाकर गुप्त रहने का काम बड़ी मजबूती से करती हैं। इसमें कई लोफर वैद्यों और दाइयों के हाथ अच्छे रंगे जाते हैं। प्रथम गर्भ न रहने के इलाज में सैकड़ों रुपये उड़ते हैं और बाद में गर्भ रहने पर उसे गिराने की कोशिश में नीचों की खुशामदें और धन की बौछारें करनी पड़ती हैं यदि घर की माताएँ और सासुएँ इस "फन" में चतुर होती हैं और उन्हें शीघ्र पता लग जाता है तो कानों कान नहीं सुनातीं और झटपट सब काम खतम कर डालती हैं। यदि देर से मालूम हुई तो अपने घर के गुप्त तहखानों में उसकी बीमारी का बहाना करके प्रसव करा दिया जाता है और बच्चा होने पर तोड़ मरोड़ अथवा वैसा का वैसा कपड़े में लपेट कर भयंकर रात्रि को शून्य स्थानों में या चौराहों में फैंक देती हैं। चौराहों पर फैंके हुए बच्चों की सूचना

कभी २ पुलिस तक भी पहुंच जाती है और बच्चा जीवित रहने पर राज्य की तरफ से उसकी परवरिश का भी इन्तज़ाम कर दिया जाता है परन्तु ऐसे वीभत्स कर्मों का पता जड़ से लगना बड़ा मुश्किल होजाता है। इनके अतिरिक्त यदि ग़रीब घर की नौकरीपेशा स्त्रियें होती हैं तो फिर पूछना ही क्या, उस उभरी हुई अवस्था में सब संसार उन्हीं के खेल का मैदान बन जाता है। वे चाहे जहां जा सकती हैं गोबर चुगने में, गौ चराने वा मिट्टी लाने में नीच लोग तथा साहूकारों के यहां तेड़ा सन्देशा तथा रसोई आदि काम काज करने पर नौकर तथा कोई नीचवृत्ति का मालिक सब ही उनके चेले होजाते हैं, और इन अबलाओं को अपनी प्राकृतिक वासनाओंके दबाव से इन कपटी चेलों के फन्दे में फंस कर आखिर इन्हेंभी वही वीभत्स कर्म करने पड़ते हैं, जो हम ऊपर रोचुकी हैं।

हमारे पूज्य रक्षको! हमारा पतन यहीं ख़तम नहीं होता। जब हम वृद्धा होजाती हैं और हमारे समग्र अङ्ग शिथिल हो जाते हैं, उस समय हमें अपनी कमक़दरी और आमदनी का रास्ता बन्द होते देख अपने बाल्यावस्था के पड़े हुए नीच कु-संस्कारों की प्राबल्यता से भयंकर नाशकारी और जाति,

धन, धर्म घातक वर्णसंकरोत्पन्नकारक व्यभिचारप्रचारक और बालहत्या कराने वाले कर्मों में प्रवृत्त होना पड़ता है। और ऐसा किये बगैर बालपने का पड़ा हुआ व्यसन पूरा नहीं होता। किसी को बेटी, किसी को बहिन, किसी को पोती, किसी को जिठोती आदि दिखाऊ प्रेमभरे शब्द कहकर व वस्त्रों, गहनों और पैसों का प्रलोभन देकर कई एक छोटी और बड़ी ऊमर की विधवा और सधवा सभी प्रकार की चेलियें बना लेती हैं। इनमें कोई तो साधारण कपड़े का कोट करा देने में और कोई साड़ी रंगा देने में और कोई नाक का तनख्वा तथा कान की बाली व गले में पहिनने का गलपटिया, मादलिया व हाथ का टड्डा आदि ज़ेवर बनवा देने से राज़ी हो जाती हैं और कोई २ दो चार रुपये लेकर खुश होती हैं। कोई खुशबूदार साबुन, बनावटी बाल, फुलमा तथा सुगन्धित तैल सेंटादि, और कोई मिष्टान्न रबड़ी मलाई आदि लेकर ही प्रसन्न होजाती हैं। इनमें अक्सर पुरुष-प्रेम से लालायित गरीब विधवाओं को बालपने की बे-रोकटोक पड़ी हुई कुटेवों के खर्चों की पूर्ति के लिये रुपयों की और पहिनने के लिये बढ़िया बारीक कपड़ों की ही आवश्यकता रहती है। और उसकी पूर्ति हमारे ज़रिये आसानी से होजाने पर उन्हें सदैव हमारे

आधीन बना रहना पड़ता है, और हमारी भी पूछ पाछ होने के साथ आमदनी और खासा ठुकरायत जम जाती है और आने वाले ग्राहकों को भी बेटा, पोता, दोयता, भतीजा, जेठूता, भानजा, और नांनदा आदि नामों से ही संबोधन किया जाता है ताकि मजाल क्या कि किसी को शक भी पैदा होजाय। जिस तरह जङ्कशन स्टेशन के स्टेशनमास्टर को दौड़नेवाली गाड़ियों के क्रास का ख़याल रखना पड़ता है, ठीक उसी तरह हमें भी अपने आने वाले ग्राहकों का टाइम टेबल देखना पड़ता है कि कोई टकरा न जावे। इतनी सावधानी करने पर सधवाओं के साधन अच्छी तरह सध जाते हैं और इनकी तरफ़ से हम निश्चिन्त रहती हैं। क्योंकि इनके गर्भ रहने पर कोई भय की बात नहीं। यदि इनके पति दिशावर होते हैं तो कोई बीमारी आदि का बहाना करके बुलालेती हैं या खुद चली जाती हैं और वर्णसंकर उत्पन्न कर देती हैं। किन्तु बिचारी अबला विधवाओं के भयङ्कर एक्सीडेन्ट होने पर बड़ी आपत्तियों का सामना करना पड़ता है। परन्तु हमारा मुद्दत का अभ्यास होने से हम ऐसे बीभत्स हत्याकारी कृत्यों के करने में रत्ती भर भी नहीं घबरातीं। कई मियां मुल्लाओं के मन्त्र, तन्त्र, तावीज और हकीमों की औषधियों और हमारे

सम्प्रदाय के डाक्टर, वैद्यों तथा दाइयों के नुसके हमारे बड़े ही सहायक और मददगार होते हैं, जिनके ज़रिये येन केन प्रकार से दो, चार, पांच, सात मास का बच्चा पेट से निकाल कर धराशायी कर देती हैं और किसी को पता लगने नहीं देतीं, ऐसी घटनाएं एक नहीं प्रतिवर्ष हज़ारों की संख्या में होती हैं, मगर हिन्दुओं में उच्च जातियां कहलाने वालों की आंखें नहीं उघड़तीं। नहीं उघड़ती हैं तो मत उघड़ो, सदैव अन्धे बने रहो, पर मुंह से तो बोलो कि इतने जाति के सर्वनाश होने के घृणित कर्म तो हमारे पास से करवा चुके, अब आगे किस हद्द तक चिरदुःखिनी और कलंकिनी बनी रहने का उपदेश करते रहोगे? हमारे इन सब किये हुए नीच कर्मों का फल आपको भोगना पड़ेगा। क्योंकि आप ही इस में मुख्य दोषी और अबलाओं को कलङ्किनी बनाने में कलङ्करूप पिता हैं। आप कलङ्की पिताओं ने ही हमें कलङ्किनी बनाया यदि आप दिव्य देव होते तो हम भी दिव्य देवियां बन जातीं, धार्मिकता के साथ पुत्र उत्पन्न करतीं और हत्या करने से वंचित रहतीं। यदि आप हमारे छोटी ऊमर में विधवा होते ही दूसरे विवाह की व्यवस्था, जैसे पुरुषों के अधेड़ और वृद्ध हो जाने पर की जाती है, करदी जाती तो इतने नीचतापूर्ण जाति

के पतन और सर्वनाशकारी कर्मों के मूलकर्त्ता आप नहीं कहलाते। अस्तु।

हमारा यह कारुणिक रुदन अथवा दुःखभरे कठोर शब्द हमारी ही दशा बिगड़ने पर नहीं, प्रत्युत हिन्दू-जाति के पतन एवं अन्य जातियों के समक्ष उसे वारंवार पददलित होते देख हृदय चीर कर निकल पड़ते हैं, और नेत्रों से जलते हुए जल की धाराएँ बँध जाती हैं, और वदन पर पड़ कर तेजाब का काम करती हैं, किन्तु उच्च जातियों के अभिमानियों पर रत्ती भर भी असर नहीं होता। उलटे कहा जाता है कि जड़ भरतजी, शुकदेवजी तथा भीष्म पितामह की तरह आजन्म ब्रह्मचारिणी बनी रहो और व्रतादि करके अपनी प्राकृतिक वासनाओं को दमन करो। कैसा मधुर और कपट भरा उपदेश है।

पिताओ! हृदय पर हाथ धरो, हम आपही से उत्पन्न हुई हैं आपकी शिक्षा को हम कैसे नष्ट कर सकती हैं। लोग शिक्षा देते हैं किताबों से परन्तु आपने दी है कर्तव्यपरायणता से, जब से समझ पड़ी और कुँवारी रहीं, रात्रि को आप ही के पास सोतीं और रात भर छुपे २ आपके पशुवत् व्यवहारों को, जो माता के साथ करते, देखतीं, दो घंटे भी चैन नहीं लेते थे, क्या

भूल गये ? हमारी माता की उपस्थिति व अनुपस्थिति में घर में आने जाने वाली युवा स्त्रियों, माता की सहेलियां व बहिनों अर्थात् हमारी मौसियों के साथ आपके किये हुये कुत्सित व्यवहारों व हँसी मज़ाकों को क्या हम भूल सकती हैं जो हमारे सामने ही किये जाते थे और हम गरदन नीची किये बैठी रहतीं व कभी २ नज़र बचा कर देख लेती थीं तथा विशेष उन्माद भरा मौका देखने पर हम आपकी आज्ञा से अथवा स्वयं बाहिर चली जाती थीं। इसके अतिरिक्त अनेक आपकी प्रेमिकाएं आतीं जिनके साथ आपका जो रस भरा प्रेमालाप होता उसे हम आनन्द के साथ रुचि से सुनतीं और पीती जातीं और विवाह होने पर किस मार्ग पर चलना चाहिये, इसका मन ही मन अनुभव करतीं। घर में इस तरह की उच्च शिक्षा का संग्रह करती हुई जब बाहर जातीं तो हमजोली लड़कों से वर वधू के खेल खेलतीं और उनके साथ छेड़छाड़ करतीं, उद्दण्डतापूर्वक लड़कियों के साथ बैठ कर निर्लज्जता के अश्लील गीत गाती और ब्याही हुई लड़कियों के शृंगार और बनाव को ध्यानपूर्वक देख कर हृदयस्थ कर लेतीं। मेले आदि के अवसरों पर ओठों पर लाल रंग और चहरे पर हरे रंग के टीके टसके लगाकर अश्लील गीत गाने और सीखने

में एक दूसरी से आगे बढ़ने की कोशिश करतीं, कहीं २ तो हमारी बहिनें जंगलों में गोबर चुगने अथवा मिट्टी लेने जाती हैं तब अथवा अपने महलों और तहखानों में इकट्ठी होने पर बराबर की लड़कियों मिल कर "श्यापा" करना और रोना सीखती हैं और यही रोना हमारा जन्म भर साथ देता है।

घर में पिताओं की तथा भ्राताओं की इस घृणित शिक्षा को और बाल्यावस्था के खेल के कुसंस्कारों को लेकर हम दश वर्ष को भी नहीं पहुंच पातीं, माता अपने संकल्प और बालपने में दी हुई लोरी के अनुसार विवाह कर देती हैं। बहुधा माताओं का संकल्प यही होता है कि किसी धनवान् के घर में चाहे जैसा वर मिल जाय तो भी इसे देदूं। बाजे मारवाड़ी दरिद्र स्त्रियें अपनी लड़कियों का प्यार करने में अपनी भाषा में इस प्रकार कलाप भी करती हैं कि "सोनेरे करधोरे विना मागों झालों ही नहीं, "जड़ाऊ तायतियां विना देशां ही नहीं, बाई ने परणीजण वालो न्याल होयसी, बंगड़ियोंरी मोज लगाय देसी" इत्यादि द्रव्य की तरफ इतनी झुक जाती हैं कि पति की उमर और स्वास्थ्य का कुछ भी

ख्याल नहीं किया जाता, चाहे पति बालक, बेजोड़, अधेड़, रोगी अथवा ऊंटबिलाई का जोड़ा क्यों न हो, सिर्फ ज़ेवर की विशेषता का लक्ष्य रखकर विवाह कर ही दिया जाता है। इस तरह बेसमझी के साथ किये हुए सम्बन्ध से हमारे १२ पन्द्रह वर्ष की कौन कहे थोड़े ही समय में भाग्य फूट जाते हैं जिससे जिंदगी भर रोती रहती हैं।

बाजे मौके इतने भयानक होजाते हैं कि दश बारह वर्ष की उम्र में हमारा विधवा होना और हमारे ३५ साल के पिता का रंडुआ होना अर्थात् हमारी ३० वर्ष की माता का देहान्त होजाना, साथ साथ ही होजाता है। उस समय पिताजी एक दो मास तक तो दिखाऊ ढंग से शिर पर काली पगड़ी बांधे फिरते हैं और जी के अन्दर यही उधेड़ बुन रहती है कि कोई नई बीबी शीघ्र लानी चाहिये। बीबी बिना घर सूना है और कुटुम्ब वाले भी सब यही कहते हैं कि भाई! विवाह जल्दी करना चाहिये, विवाह के बग़ैर कैसे काम चलेगा। बस फ़िर क्या था, थोड़े ही समय में कोशिश करके हमारी ही उम्र की १०, १२ वर्ष की लड़की के साथ विवाह रच कर घर में ले आते हैं और महल में बत्ती जला कर उससे नवीनता के साथ

फिर से किलोल का श्रीगणेश होता है। इत्यादि दुष्टता से भरी हुई नित्य नई लीलाओं को सदैव हम अपना कलेजा थाम कर आश्चर्य से देखती और फूट २ कर रोती हैं कि हे विभो! तेरी माया बड़ी विचित्र है, तेरी माया ने स्वार्थान्ध पुरुषों के हृदय को अन्धकार से आच्छादित कर दिया है और कलेजे को वज्र समान कड़ा बना दिया है। कैसी अज़ीब लीला है। एक ३५ वर्ष के पुरुष की स्त्री मरने पर कहा जाता है कि जल्दी विवाह करो, विवाह बग़ैर कैसे काम चलेगा, बिना स्त्री घर सूना और जीवन व्यर्थ है। परन्तु उन नरपिशाच पिताओं और कुटुम्बियों के हृदय में इस बात की ज़रा भी स्फुरणा नहीं फिरती कि इस अबोध, अशिक्षित और कुसंस्कारों से प्रेरित बारह पन्द्रह वर्ष की बालिका की क्या दशा होगी? क्या इसके विवाह बग़ैर काम चल जायगा? पुरुष के तो घर ही सूना होता है पर स्त्री के तो पति बिना संसार ही सूना होजाता है, पुरुषों का विवाह न होने पर खुले मैदान वेश्याओं के श्रीचरणों में अपनी भक्तिपुष्पाञ्जलि अर्पण करते हैं तो क्या स्त्रियें हिन्दूजाति का पिण्डदान सराहने और नेत्रधारा से जलाञ्जलि देने में कमी रक्खेंगी? कुँवारी कन्याओं के साथ रँडुओं का पुनर्विवाह हुए बग़ैर रँडुओं का जीवन वृथा है तो

उन बालविधवाओं का, जिनकी शास्त्रकारों ने जगह २ काम-चेष्टा पुरुषों से आठगुणी अधिक वर्णन की है, कैसे साथैक होगा ?

विचार का स्थल है जो पुरुषसमाज अपने को सभ्य, शिक्षित एवं स्त्रीजाति का सरताज तथा बुद्धिमान् होने का दावा करता है वह तो कुछ दिन की कौन कहे घण्टों तक ही शारीरिक वेगों को न सम्हाल कर व्याकुल होजाय और हम अशिक्षित, मूर्ख, असभ्य एवं पुरुषजीवों से हीन तथा मर्दों के पांव की जूती गिनी जाने वाली अबलाएँ जिनकी शिक्षा का यह हाल है कि जिन घरों में हम बड़ी हुईं उन घरों को यदि कुकर्मों की पाठशाला ही नहीं प्रयोगशाला कहदें तो अत्युक्ति नहीं होगी; बाल्यावस्था से समझ पड़ने व विवाह होने तक कुकर्मों का तथा गली में हमजोली लड़के लड़कियों के साथ खेल कूद में कुचरित्रों का ही संग्रह किया है, शारीरिक वेगों को रोकने अर्थात् प्रकृति के अटल सिद्धान्तों को उलट देने में कैसे पारङ्गत होजायँ। स्त्रियों के पांव में पहनी हुई पायजेब की झनकार सुनने मात्र से ही पुरुषों के पेट में चूहे लोटने लगें तथा आंखे फटकर कनखूरे खड़े होने लगें और अबलाओं से कहा जाय कि तुम

आजन्म ब्रह्मचारिणी बनी रहो, यह कहां का न्याय और कैसे सम्भव होसकता है ! उस न्यायी परमेश्वर की सृष्टि में ऐसी अन्यायी जातियों का जीवित रहना ही आश्चर्य है।

अब रहा तीर्थ व्रतादि का हिसाब सो बड़ा ही टेढ़ा है, मन्दिरों में जाती हैं तो प्रथम तो पुजारी और कथकड़ों से बचना ही मुश्किल है। बाद में नौजवान ही नहीं, गज भर की डाढ़ी वाले दर्शक लोग भी बड़ी २ आंखें फाड़ कर इतनी तेज निगाह से घूरते हैं कि तबियत परेशान होजाती है। कहा भी है—

गज़ब की चीज़ है यह हुस्न इन्सां लाख बचता है।
मगर दिल खिंचही जाता है तबियत आही जाती है॥

इसी के अनुसार हम पर यदि किसी की मनचलाई हो जाती है तो वह पुरुषव्याघ्र अपने लम्बे २ जय श्रीकृष्ण के जाल में कलदार की झनकार लगाकर वृद्धा कुट्टिनियों के सहारे हमें फँसाने की कोशिश करता है और हम अबलाएं इन दुष्टों के दांव पेचों को न जानकर चांदी के चिलकते हुए मृगतृष्णा-रूप जाल में जा फँसती हैं और फिर हमारी मिट्टी पलीत हुए बगैर नहीं रहती।

इससे आगे चलकर तीर्थों में जाती हैं तो तीर्थों के पण्डे और भगवीं चद्दर के सण्डे आगे ही पाते हैं। बहुधा देखती हैं कि सधवाओं की निस्वत विधवाओं के अङ्ग प्रत्यङ्ग अधिकता से खिलते और परिपुष्ट होते हैं, जिसे देखकर लिखे पढ़े पुरुषों का शिष्टसमाज व चार इञ्ची चौड़ा तिलक लगाने वाले पण्डित तथा धर्माचार्य्यों की लार टपकने लगती है तो फिर इन अपढ़ और मूर्ख पण्डों तथा संडों के मुंह से पानी गिरने लगे इसमें आश्चर्य ही क्या होसकता है। इनमें पण्डे लोग तो चोरी, ठगी, बेईमानी और धोकेबाज़ी से अबलाओं का धन, धर्म हरण करते हैं। किन्तु सण्डों की लीला जुदी है। इनके यहां धर्मान्ध हिन्दुओं के द्रव्य से बने हुए विशाल स्थानों का नाम बाहिर से "कुटिया" और "आश्रम" रक्खा हुआ होता है किन्तु अन्दर में विलास की सामग्रियें और सजावट की चीज़ें तथा विश्राम लेने के स्थान बड़े ही सुन्दर और सिलसिले से।दिल लुभाने वाले बने हुए होते हैं। जिसे देखकर घर से तिरस्कृत तथा दुःखित अबलाओं,की स्वतः ही वहां रहने की रुचि हो जाती है और कोई धर्मभाव और कोई पापवासना को लेकर वहां रहने लगती हैं। और इन संडों की कपट माया के मोहक ठाट बाट को देखकर सण्डों के प्रति इनकी बड़ी भक्ति हो

जाती है मानों उनकी चेलियों में अपना नाम ही लिखा देती हैं। जब सण्डे देखते हैं कि यह भोली भाली सुन्दर मूर्ति हमारे शाब्दिक जाल में फंसकर कटाक्षपूर्ण जहरीले किन्तु मधुर वाक् बाणों से मर चुकी हैं तो आहिस्ता २ उनका बचा खुचा माल और सतीत्व लूट लेते हैं और इन अबलाओं के गर्भ रहने पर उसे गिराने में यह लोग बड़े ही सिद्धहस्त होते हैं। आये दिन सैकड़ों हत्यायें इनके हाथ से गङ्गा माता की तथा पर्वतों की गोद में अर्पण की जाती हैं। सारांश यह कि वर्तमान स्थिति के, याने जहां नित नये रासरंग रचे जाते हैं और माल मसाले उड़ाये जाते हैं तथा तबलों पर थप्पी जमती है और भजनों में "रसीली राधे ने मोहन वश कीन्हो" व "छबीले मोहन ने मोपर जादू डारा" इत्यादि कुत्सित हाव भाव व बैठी हुई अब-लाओं पर नीचतापूर्ण कटाक्षों के गायन गाये जाते हैं, ऐसे वि-ह्वित, उपाधिजन्य और उन्मादपूर्ण मन्दिरों और तीर्थों में अप-नी उभरी हुई युवा अवस्था के भयंकर वेगों को संभाले रख-ना असंभव और दुराशामात्र है। क्योंकि वहां पर रात दिन रहने वाले ढोंगी संन्यासी, पण्डे पाखंडी, तिलक छापा करने वाले त्रिपुण्डी और धर्म की व्यवस्था बताने वाले अफण्डी पण्डित तथा कमर तक जल में खड़े रह कर माला जपने वाले

भक्त इन सब को गंगाजलि और गीता उठवा कर पूछा जाय कि आप लोग इस प्राकृतिक झपेटे को रोक सकते हैं? कदापि नहीं, जब ये लोग भी इस प्राकृतिक झपेटे से नहीं बच सकते तो हम अबलाओं की कौन विकारी है? ऐसी स्थिति में हम बारह, पन्द्रह वर्ष की अबोध अबलाओं को ऐसे दुर्घट झपेटे का सामना करके इन्द्रियों के वेगों को रोकने के लिये कहना निरी मूर्खता और उद्दण्डतामात्र है।

अब रही व्रतों की बात अर्थात् उपवासी रह कर के इन्द्रियों को मारो, ऐसा कहना मानों मानसिक ज्ञान से रहित हो नहीं शून्य होने का परिचय देता है। क्योंकि उपवास से सिर्फ़ शरीर ही कृश होता है इन्द्रियें नहीं मरतीं, भूख से इन्द्रियें शिथिल ज़रूर हो जाती हैं किन्तु भूख के वेग से कामदेव का वेग प्रबल होने के कारण उपवास से तो क्या कोई भी प्रकार से इन्द्रियों का मरना सम्भव नहीं। भगवान् ने साफ़ बतलाया है कि—

नहि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः॥

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन् ।
इन्द्रियार्थान् विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ॥

अर्थात् कोई भी पुरुष विना कर्म किये क्षण भर भी नहीं ठहर सकता क्योंकि प्रकृति के गुण प्रत्येक से कर्म कराते हैं; सत्व, रज और तम ये प्रकृति के गुण हैं। हाथ, पैर, मुख, गुदा और उपस्थ ये कर्मेन्द्रिय कहलाते हैं। जो मूढबुद्धि पुरुष कर्मेन्द्रियों को हठ से वलात्कार रोक कर इन्द्रियों के भोगों को मन से चिन्तवन करता रहता है वह मिथ्याचारी अर्थात् दंभी कहा जाता है। मतलव यह है कि किसी स्त्री या पुरुष को ज़बरदस्ती के साथ या दुष्ट रिवाज़ों के कारण परस्पर मिलने नहीं दिया जाय तो यह नहीं कह सकते कि वह रुके हुये या रोक रक्खे हुए स्त्री पुरुष ब्रह्मचारिणी या ब्रह्मचारी हैं, क्योंकि यह विषय मन से सम्बन्ध रखता है और मन की गति को रोकना मूढ जीवों की सामर्थ्य के बाहर हो इसमें आश्चर्य्य ही क्या ?

पर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी जैसे समझाने वालों के होते हुए भी साक्षात् भगवान् का कृपापात्र सखा धनुर्धारी अर्जुन कहता है—

चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्॥

कि हे भगवन्! यह मन इन्द्रियों को क्षुब्ध करने वाला, बड़ा ही चञ्चल, प्रमथन स्वभाव वाला तथा बड़ा दृढ़ और बलवान् है। इसलिये उसका वश में करना मैं वायु की भांति अति-दुष्कर मानता हूं॥

इतना ही नहीं गीता अध्याय २ श्लोक ६१ में भगवान् स्वयं आदेश करते हैं कि—

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवांभसि॥

जैसे वायु समुद्र में नाव को इधर उधर घुमाता है, वैसे मन विषयों में प्रवृत्त हुए इन्द्रियों में जिस इन्द्रिय को प्राप्त हुआ वही (इन्द्रिय) इस मनुष्य की बुद्धि को हर लेता है॥

विचार का स्थल है कि मन-आधीन हुई इन्द्रियों का रोकना अर्जुन और स्वयं भगवान् ने दुष्कर बतलाया है तो वर्तमान समय की शिक्षा, संगति और परिस्थिति को देखते हुये तथा

सब प्रकार की भोगविलास की कामोत्तेजक सामग्रियों के मौजूद होते हुए कुचरित्र और कुसंस्कारों से प्रेरित हुई थकी हम बारह पन्द्रह वर्ष की क्षत और अक्षतयोनि विधवायें, जिन्होंने पतिसहवास-सुख पूर्णतया प्राप्त नहीं किया है, व्रतादि करके इन प्रबल मानसिक काम के वेगों को रोकने में कैसे समर्थ हो सकती हैं ? मन-आधीन वेगवती इन्द्रियों की गति पर विचार करते हुये क्या हमारा ब्रह्मचारिणी बने रहना सम्भव हो सकता है ? कदापि नहीं, ऐसी कलिकाल की भयानक परिस्थिति में हमें ईश्वर-आज्ञा का झूंठा ढोंग बनाकर नियोग और पुनर्विवाह के विधान से वञ्चित रखकर यह समझे रहना कि घरों में बैठी हुई समग्र बालविधवाएं अपने मानसिक वेगों को रोक कर ब्रह्मचारिणी बनी हुई हैं, सर्वथा मिथ्याचार, दम्भ और मूर्खता है।

हमारे प्राचीन काल के ऋषियों ने इन मानसिक वेगों के आधीन हुई थकी इन्द्रियों की प्रबलता पर खूब विचार किया था और अन्त में प्रत्येक व्यक्ति से मन और इन्द्रियों का निग्रह होना अतिदुष्कर जान क्षत और अक्षतयोनि विधवाओं के नियोग और पुनर्विवाह करने की धार्मिक आज्ञा दी थी। मनु महाराज अपनी स्मृति अध्याय ९ में आज्ञा देते हैं कि—

या पत्या वा परित्यक्ता विधवा वा स्वयेच्छया ।
उत्पादयेत्पुनर्भूत्वा स पौनर्भव उच्यते ॥ १७५॥

जब स्त्री पति के त्याग देने पर अथवा विधवा हो जाने पर अपनी इच्छा से अन्य पुरुष की भार्या बनकर पुत्र उत्पन्न करती है तब वह पुत्र पौनर्भव कहा जाता है ॥ १७५ ॥

इसी तरह महर्षि शातातप अपनी स्मृति में बतलाते हैं कि—

उद्वाहिता च या कन्या न संप्राप्ता च मैथुनम् ।
भर्तारं पुनरभ्येति यथा कन्या तथैव सा ॥ ४४ ॥
सत्तुद्गृह्य तु तां कन्यां सा चेदक्षतयोनिका ।
कुलशीलवते दद्यादिति शातातपोऽब्रवीत् ॥४५॥

जिस कन्या का विवाह हो चुका है किन्तु पति से सहवास नहीं हुआ हो वह पति के मर जाने पर दूसरा पति प्राप्त करे। क्योंकि वह अविवाहिता कन्या के समान है ॥ ४४ ॥ महर्षि शातातप ने कहा है कि यदि ऐसी कन्या पति के सहवास से बची होवे तो उसको ग्रहण करके कुलीन और शीलवान पुरुष के साथ विवाह कर देना चाहिये ॥ ४५ ॥

इसके सिवाय महर्षि याज्ञवल्क्य ने अपनी स्मृति अध्याय एक में बतलाया है कि—

अक्षता च क्षता चैव पुनर्भूः संस्कृता पुनः ।
स्वैरिणी वा पतिं हित्वा सवर्णं कामतः श्रयेत्॥६७॥

अर्थात् कन्या चाहे पुरुष-सहवास से बची हो चाहे पुरुष-
सहवास से दूषित हुई हो दूसरी बार विवाह होने से पुनर्भू
कही जाती है। और जो कन्या अपनी इच्छा से पति को छोड़-
कर अपने वर्ण के किसी पुरुष को ग्रहण करती है वह स्वै-
रिणी कहलाती है ॥ ६७ ॥

इसी के अनुसार महर्षि वशिष्ठ स्मृति अध्याय १७ में
साफ आज्ञा है कि—

पाणिग्राहे मृते बाला केवलं मन्त्रसंस्कृता ।
साचेदक्षतयोनिः स्यात्पुनः संस्कारमर्हति ॥ ६६ ॥

अर्थात् कन्या का पाणिग्रहण मन्त्रपूर्वक हुआ होवे, किन्तु
पति का उससे सहवास होने से पहले ही उसका पति मर जावे
तो दूसरे वर के साथ उसका विवाह कर देना चाहिये॥ ६६ ॥

यह तो हुआ पुनर्विवाह के लिये विधान अब नियोग के
लिये मनु महाराज अपनी स्मृति अध्याय ६ में आज्ञा देते हैं—

देवराद्वा सपिण्डाद्वा स्त्रिया सम्यङ् नियुक्तया ।
प्रजेप्सिताधिगन्तव्या सन्तानस्य परिक्षये ॥५९॥

अर्थात् स्त्री को चाहिये कि सन्तान नहीं होवे तो देवर अथवा अन्य सपिंड पुरुष से नियुक्त होकर मनोवांछित संतान पैदा करे ॥ ५६ ॥

यह धार्मिक व्यवस्थाएं और आज्ञाएं उस सात्विक समय की हैं जिसमें बालविधवा कोई विरली ही होती थी, मनुष्यों की आयु पूरी होती थी सब लोग अपना जीवन सादगी से व्यतीत करते थे, अपने कर्तव्यों को अच्छी तरह समझते और पालन करते थे, वर्तमान समय की भांति लोग दुश्चरित्रों में सने हुये न थे। उन्माद और विलास की सामग्रियें स्वप्न में भी दृष्टिगोचर नहीं होती थीं, सब लोग आनन्द और शांति सुख सम्पादन में निमग्न थे। यदि आज की भांति हिन्दू-जाति की दुर्दशा और १२, १५ वर्ष की बालविधवाओं का देशव्यापी कोलाहल और करुणाक्रन्दन उस समय होता तो उपरोक्त दी हुई महर्षियों की आज्ञाओं पर से सहृदय सज्जन सहज ही अनुमान कर सकते हैं कि वे दयालु, दूरदर्शी, त्रिकालज्ञ, प्रकृति के अटल सिद्धांतों को मानने वाले महात्मागण कैसी व्यवस्था करते।

अलबत्ता शास्त्रों में इन आज्ञाओं का पूर्वापरविरोध बाक-हुय पाया जाता है परन्तु उस से यह मतलब नहीं कि बाक-

विधवाओं के पुनर्विवाह और नियोग का निषेध किया गया है, ऐसा कदापि नहीं हो सकता, क्योंकि शास्त्रकार महर्षि बड़े ही ज्ञानी और स्थितप्रज्ञ थे। वे लोग ऊटपटांग टप्पा कदापि नहीं मारते थे। उनका मतलब यह है कि एक महत्वपूर्ण धर्म का प्रतिपादन करते समय नीचे दर्जे के धर्म की निकृष्टता बतानी ही पड़ती थी। निर्गुण उपासना की महिमा का वर्णन करने वाले सगुण उपासना को नीची ही बतावेंगे। इसी तरह निष्काम कर्मों की विशेषता दिखाते सकाम कर्मों को तुच्छ कहना पड़ेगा, तथा ब्रह्मज्ञान की महत्ता प्रतिपादन करते समय कर्मकाण्डादि समग्र सकाम कर्म तुच्छ ही बतलाये गये हैं। इसीलिये पातिव्रत धर्म की महिमा के सामने छिपे २ व्यभिचार करना दुष्कर्म ही कहा गया है। पति के वियोगादि की दुर्घटना के घटित होने पर अपने प्राकृतिक वेगों को, जो कि अत्यन्त बलवान् और उनका संभालना बड़ा कठिन है, संभाले रहने की निस्बत नियोग और पुनर्विवाह की व्यवस्था मध्यम ही बतलाई है। और यह धर्मों के परस्पर की तारतम्यता है। जैसे महर्षि पराशर ने अपनी स्मृति अध्याय ४ में आज्ञा दी है कि——

नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीबे च पतिते पतौ ।
पंचस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते ॥ ३०॥

पति यदि विदेश गया हो और उसका पता नहीं होवे, मर जावे, संन्यासी हो जावे, नपुंसक हो अथवा पतित हो जावे तो इन पांच आपत्तियों में स्त्रियों को दूसरा पति कहा है ॥ ३० ।

यह विधान बताकर इसकी तुलना के लिये इस विधान से ऊंचे दर्जे का धर्म इस प्रकार बतलाया है कि-

मृते भर्तरि या नारी ब्रह्मचर्यव्रते स्थिता ।
सा मृता लभते स्वर्गं यथा ते ब्रह्मचारिणः ॥३१॥

जो स्त्री पति की मृत्यु होने पर ब्रह्मचर्य-व्रत धारण करती है अर्थात् किसी पुरुष से सहवास करने की मन वचन से भी कल्पना नहीं करती वह मरने पर ब्रह्मचारियों के समान स्वर्ग में जाती है॥ ३१ ॥ सो वास्तव में उचित है परन्तु इससे यह मतलब नहीं कि यदि कोई ब्रह्मज्ञानी न हो तो वैदिक कर्मकांडों का भी त्याग करदे और निर्गुण उपासना की धारणा न होने पर सगुण उपासना याने मन्दिरों में जाना और देवपूजन करना भी छोड़दे, अथवा निष्काम

कर्म करने की रुचि न होने पर सकाम कर्मों का भी त्याग करदे। इसी तरह प्रबल मानसिक वेगों को न रोक सकने पर यह कोई आवश्यक नहीं कि महर्षियों की बताई हुई धर्मपूर्वक नियोग और पुनर्विवाह की व्यवस्था छोड़ कर अपने जन्मसिद्ध अधिकार से वंचित रहे। शास्त्रों में बताये हुए धर्मों के परस्पर की तारतम्यता को न समझ कर जो नियोग और पुनर्विवाह की धार्मिक व्यवस्था को निषेध बताकर अबलाओं को अपने जन्मसिद्ध अधिकारों से वंचित रखने की चेष्टा करते हैं वे लोग मानों बिचारी अबोध गौओं के गले पर छुरी चलाने का काम करते हैं।

हिन्दू-जाति के स्तम्भो! अब हृदय को थाम कर गहरा विचार करो कि अत्यन्त प्राचीन काल के ऋषि महर्षियों ने उस सात्विक ज़माने में मानसिक वेगों को शांत करने के लिये जो धार्मिक विधि बतलाई है, आज इस भयानक, उपद्रवी और विषयी ज़माने में उस धर्म-विधि को काम में न लाकर छुपे २ कुत्सित प्रेम व वर्णसंकर उत्पन्न करने वाला व्यवहार होते देख, उन मूक अबला विधवाओं के लिये क्या विचार करते हो? हमारे इस कारुणिक रुदन का कुछ भी वास्तविक

असर आपके अन्तःकरण में हुआ है तो दया कर के बतलाये कि वर्तमान ज़माने के रंग ढंग और हवा को देखते हुए क्या हम अज्ञानाच्छादित क्षुद्रजीव अबला बालविधवाओं का मन मार कर ब्रह्मचारिणी बनी रहना संभव हो सकता है? यदि नहीं तो हमें क्या २ करना चाहिये और हिन्दू-जाति की भलाई किस मार्ग में है? क्या हमारे लिये जाति वर्ण भेद का विचार न कर व्यभिचार करना श्रेष्ठ होगा या महर्षियों की बताई हुई धर्मविधि अनुसार व्यवहार करना? यदि आपको उन धर्मज्ञ महर्षियों की सच्ची संतान होने का घमण्ड है और आप में ज़रा भी धर्मभाव मौजूद है तो निःसन्देह आपको महर्षियों की बताई हुई धर्म-विधि मान्य होगी। किन्तु आप बोलते नहीं और मौन साधे हुए हैं और बाल विधवाओं के विवाह का नाम लेते ही लड़ने और गालियां देने तैयार होजाते हो उसका कारण कुछ विचित्र ही प्रतीत होता है। हमारी समझ में आपकी स्वार्थता धर्मविधि को सत्य कहने के लिये आपका मुंह बंध किये हुए है और आपको बोलने तो क्या ज़बान खोलने भी नहीं देती। आपकी यह बढ़ी हुई स्वार्थता अबलाओं का ही अनिष्ट करने में बस नहीं करती, देश और समाज को रसातल पहुंचाती है।

यदि कोई धर्म बहादुर अपनी वाकूपटुता प्रकट करने को खड़ा होता है तो कह डालता है कि विधवाओं का विवाह करना उचित हो तो पहले अपनी दादी, नानी और माता का विवाह कर देना चाहिये और यदि अछूतोद्धार अच्छा है तो भंगी और चमारों के साथ रोटी बेटी का व्यवहार करो। धन्य है इन बहादुर बच्चों की बुद्धि पर ! कैसी अच्छी बात कही, विवाह करो तो नाड़ हिलती हुई बुढ़िया दादी नानी का ही करो (जिनका काठ श्मशान में जाचुका है) या दुःखसागर में पड़ी हुई वैधव्य दुःख से दुःखित दश पन्द्रह वर्ष की बालविधवा अबलाओं को नरक-यातनाएं भोगने दो। अछूतोद्धार चाहते हो तो भंगी के साथ भोजन करो या उनके साथ ग्लानि, घृणा करते हुए उनका तिरस्कार करते रहो, प्रेम का वर्ताव मत करो। कैसा अच्छा इन्साफ है, चढ़ते हो तो सूली पर ही चढ़ो नहीं तो रसातल में पड़े रहो। यही सुधार है, यही सद्विचार है। इसके मध्य में ज़मीन पर पांव रखने की कोई आवश्यकता नहीं। बलिहारी इस बुद्धि पर !

हिन्दू-जाति के धर्म वीरों की इस दशा को निहार कर ऐसा कौन कठोरहृदय व्यक्ति होगा जो फूट २ कर न रोये,

अथवा अपने गर्मागर्म दो आंसू न बहाये। कैसी विचित्र गति है कि विधर्मियों के हाथ से एक भेड़ बकरी के मर जाने पर तो ये लोग शोर, गुल और कोलाहल मचाकर ज़मीन आस्मान के कुलावे लगाने की कोशिश करते हैं और राजा महाराजाओं तक अपनी बग्गियों और मोटरों की दौड़ लगाकर फ़रियाद फ़रियाद करते हैं और कहते हैं हमारा धर्म डूब गया। किन्तु अफ़सोस के साथ हमें रोना पड़ता है कि हम अबला विधवाओं को बेवारिसी माल की तरह कोई भी भगा ले जाय, अथवा विधर्मी बना ले व चाहे जितने कोई हम पर अत्याचार क्यों न करे, व हमारा सतीत्व नष्ट करदे व हमें फ़ुसला कर कुकर्म में प्रवृत्त करदे व हमारे खाने पीने का भी ढंग न हो और हम पाई पाई के लिये मोहताज होजायं, चाहे हम इस जीवन शरीर से कितनी ही नरक-यातनाओं को क्यों न भोगें, पर हमारे ये कलियुगी धर्मवीर राजा महाराजाओं तक फ़रियाद तो क्या "चू" तक भी नहीं करते। सारांश कि इन धर्मध्वजियों की दृष्टि में भेड़ बकरी के जीवन से भी हम अबला बालविधवाओं का जीवन सर्वथा निकृष्ट और गया बीता है। तभी तो भेड़ बकरी के मारे जाने पर "जो हिन्दू-धर्म के खिलाफ़ नहीं माना जाता" शोर गुल मचाया जाय और अबला

बालविधवाओं के विधर्मियों के बहकावे, फुसलावे अथवा बलात्कार में आकर विधर्मी बनाये जाने पर व उन पर घोर जुल्म करने पर व उनका धर्म भ्रष्ट करने पर ये हिन्दुधर्मात्मिक चुप्पी साधे बैठे रहे हैं। एक सहधर्मी स्वर्णकार की कन्या का यज्ञोपवीत संस्कार कराये जाने पर धर्म के बिगड़ने की दुन्दुभि बजाई जाय और विधर्मियों के यहां हिन्दु कन्याओं के कानों में चांदी की बालियां और पात्रों में पजामा पहनाया जाय तोभी हमारे धर्मधुरीण भाग्य-विधाताओं की आंखे न खुलें। खुलें क्यों! विधवाएँ तो बेचारी बेवारिसी माल ही ठहरीं, इनकी परवाह करे भी तो कौन? धन्य है! इससे बढ़ कर जाति के रसातल पहुंचने का रास्ता और क्या सुगम हो सकता है।

अरे धर्मात्माओ! हमारी एक भी तो सुनो, हम कठिन वैधव्य के रौरव नरक में पड़ी हुई रोती हैं, बिलखती हैं, बिल्लाती हैं, घोर दुःख पाती हैं और असहनीय तिरस्कार तथा नरकयातनाएं सहती हैं तो भी गिड़गिड़ाती और हाथ जोड़ती हैं। मगर हाय! कोई नहीं सुनता, क्या समग्र हिन्दू-समाज सो गया। यह बड़ी २ सभा सोसाइटियां होती हैं, बड़े बड़े नामधारी लीडर गला फाड़ २ कर प्लेटफार्मों पर

चिल्लाते और आकाश पाताल की बातें कह डालते हैं, संसार के सुधार का दम भरते हैं, भारत को स्वतंत्र बनाना चाहते हैं, काले और गोरों के अधिकारों को तराज़ू पर तोलते हैं, मगर हमारे जन्मसिद्ध अधिकारों को छीन कर हमारा कोई सवाल ही नहीं सुनता। यदि कोई बड़ा भारी साहस कर के दबी ज़बान से हमारा पक्ष लेकर प्रश्न पेश करता है तो बाक़ी के लोग विरोधी होकर उसे दबा देते हैं और उसका किया हुआ प्रस्ताव रद्दी की टोकरी में फेंक दिया जाता है या टालम-टोल करने के लिये विद्वद्परिषद् के सुपुर्द कर दिया जाता है, मगर नतीज़ा कुछ भी नहीं होता। यदि इन सभाओं में कुछेक फ़ैन्सी सभ्यताधारी पुरुष होते हैं तो बड़े वाद विवाद के बाद सभ्यता की डींग हांकने के लिये इस नतीज़े पर पहुंचते हैं कि इन विधवाओं के लिये विधवा-आश्रम खोलकर उस में इन्हें रक्खा जायं ताकि यह विधवाएं व्यभिचार से वञ्चित रहें। किन्तु पिताओ! याद रक्खो हम विधवाएं कोई मक्खी, मच्छर, पक्षी, भेड़, बकरी आदि मूक जन्तु नहीं हैं और न हमने कोई आपका घोर अपराध ही किया है जिन्हें घेरे (बाड़े) में बन्द करके रक्खी जायं और उनके जन्मसिद्ध अधिकार छीन लिये जायं। ऐसा करना हिन्दू ललनाओं का

अपमान करना है। निश्चय जानिये हिन्दू-ललनाओं में धर्म की मात्रा अधिक होती है और वे धर्म की महत्ता को अच्छी तरह जानती हैं वे विना साधन स्वतः अपनी इच्छा से धर्म को बेचकर भ्रष्ट नहीं करतीं विशेषतः स्त्रियों की स्वाभाविक वृत्ति होती है वे चलाकर चेलेञ्ज नहीं देतीं। इनके धर्मघाती वेही आवारा रँडुए हैं जो गली २ में सनम २ की आवाज़ लगाते, सीटी बजाते और गुण्डों की पोशाक पहने हुए घूमते हैं। इनके अतिरिक्त बड़े बड़े नामधारी टाइटिलधारी घरों में बैठे हुए, अमीर कहलाने वाले शौक़ीन अजगर तथा सभ्यता की ज़हरीली पोशाक में ढके हुए सांप, व रंडियों की भांति चंडाल, बालों को रखकर छैल बने फिरते हैं और अबलाओं के धर्म भ्रष्ट करते हैं। बड़ी दया होगी यदि इन रँडुओं को इकट्ठा कर के एक "रँडुवाश्रम" खोलकर उसमें बन्द कर दिया जाय। इन रँडुओं के "रँडुवाश्रम" में बन्द होने पर विधवाएं स्वतः ही इनके अत्याचार से बच जायंगी और फिर विधवाश्रम के खोलने की आवश्यकता ही न रहेगी। परन्तु पिताओ ! यह तो बताओ कि किसी को ज़बरदस्ती कालकोठरी में बन्द करके उसके ईश्वरदत्त अधिकारों को छीन लेना और प्राकृतिक वेगों को दबाने की चेष्टा करना प्रकृतिसिद्धांत है या आपही का निर्धारित किया हुआ न्याय है ?

विधवाश्रम के अतिरिक्त हमारे दुःखों को जड़ मूल से खो देने का उपाय बालविवाह बंद कर देना भी बतलाया जाता है परन्तु ऐसे उपायों से हम अबलाओं का उद्धार नहीं हो सकता क्योंकि प्रथम तो यह विषय समय को देखते हुए भ्रामिक ही है, यदि भ्रामिक न भी हो तो आग लगने बाद कुआ खोदने की तजवीज सोचना कोई बुद्धिमत्ता नहीं कही जा सकती और वह लगी हुई आग इन खाली सोच विचारों में बैठे रहने से न बुझ कर अपनी प्रचण्ड ज्वालाओं से समाज को ही नहीं, देश भर को भस्म कर देती है। यह बालविवाह बंद करने का प्रस्ताव सर्वथा निर्मूल और भ्रामिक है। क्योंकि वर्तमान परिस्थिति और बढ़ी हुई विलासप्रियता तथा रहन सहन के ढंग व उन्माद की सामग्रियों में बढ़ी हुई रुचि व आचार विचारों की व्यवस्था को देखते हुए १० तथा १२ वर्ष से अधिक उमर की बालिका और १५, १६ वर्ष से अधिक अवस्था का बालक कुँवारा रहना उचित प्रतीत नहीं होता। यदि कोई माई का लाल रख भी लेतो.ड.के बिगड़ने की सम्भावना समय को देखते निर्मूल नहीं कही जा सकती, और सभाएं भी १०-१२ वर्ष से ज्यादः उमर की कन्याएं अविवाहित रखने की सम्मति नहीं देतीं अतएव बालविवाह कदापि बन्द नहीं हो सकता।

इन सब निरर्थक प्रस्तावों व प्रश्नों को देखती हुई हम सर्वथा निराश हो जाती हैं और कहना पड़ता है कि समग्र हिन्दू-समाज सो गया और बड़ी २ सभाएं हमारे लिये कुछ भी नहीं करतीं। यह सिर्फ अपने पुरुष-समाज के स्वार्थों को ही लक्ष्य में रख कर आडम्बर रचती हैं और कागज़ी घोड़े दौड़ा कर थोथे प्रस्ताव पास कर डालती हैं, और जिन खर्चों आदि से पुरुषों को कष्ट होता है उसके लिये नेता इकट्ठे होकर गला फाड़ २ कर स्पीचें झाड़ते हैं; मगर हम अबला विधवाओं के विवाह का प्रश्न आते ही सब चुप्पी साध जाते हैं या शीत में आये हुए बीमारों की भांति बड़ी जकवली मचाते हैं और धर्म के नाश होने की दुहाई देते हैं। इसलिये ऐसे प्रस्तावों को सभा के कार्यकर्ता लोग सभा के स्टेज तक ही नहीं आने देते, क्योंकि सभाएं क्या होती हैं मानों विवाह शादी के जलसे मनाये जाते हैं और उसी तरह शांति आदि रहने के लिये सभाओं की भी रचा की जाती है। यदि किसी सच्ची बात के पेश करने में सभा में गड़बड़ी होने की संभावना हो जाय तो उसे पेश ही नहीं करते और छुपा देते हैं, सभा की तय्यारी कागज़ी घोड़ों की घुड़दौड़ तथा सभामंडप की सजावट में हज़ारों रुपये लगाकर तीन चार रोज़ तक

माल उड़ा कर खर्चा करके शांति से घर लौट जाना ही सभा की सफलता मानी जाती है और एक आर्य पुरुष के मरने पर भयंकर शोक प्रकट करते हैं किन्तु हज़ारों की संख्या में १०, १५ वर्ष की बालविधवाओं के वैधव्य के भयंकर रौरव नरक में सड़ कर आत्मसमर्पण कर देने पर भी इन्हें रत्ति भर शोक नहीं होता। शोक होना युक्तिसंगत भी नहीं क्योंकि जिस व्यक्ति को लकवे की बीमारी हो जाती है उसका अर्धाङ्ग शून्य हो जाता है और मुद्दत पाकर वह शून्यता इतनी बढ़ जाती है कि वह अपने आधे अंग के दुःख और दर्द से सर्वथा बे-खबर हो जाता है जिससे उसकी मृत्यु हो जाती है। ठीक यही दशा हिन्दू-समाज की हो रही है। हिन्दू समाज अपने आधे अङ्ग को शून्य करके उसके दुःख दर्द से बेखबर होकर मृत्यु-मुख की ओर दौड़ा जा रहा है।

हिन्दू-समाज शूद्रों और अछूतों का अनादर और घृणा करके अपने पावों को काट कर पंगु बन बैठा और अबलाओं पर अत्याचार करके आधे अंग से शून्य होगया। हाय! ऐसे पंगु और अर्धाङ्गहीन समाज के शिर पर यदि विधर्मियों की नित नई जूतियों के मौर बांधे जायं तो आश्चर्य ही क्या? हिन्दू

समाज की दुर्दशा को देख कर हम सहसा रोपड़ती हैं और कारुणिक रुदन करती हैं कि उन महर्षियों की सन्तान सर्वथा लोप होगई जिन्होंने परहित साधन के लिये अपने शरीर पर नमक लगा कर गौ से मांस तक चटा दिया और अपनी हड्डियां निकाल कर देदीं, उस प्रातःस्मरणीय महर्षि दधीचि का नाम संसार में सूर्य की तरह आज भी प्रकाशमान होरहा है। महाराजा शिवि ने एक कबूतर की रक्षा के लिये अपने जीवित शरीर से मांस काट कर देदिया। सूर्यवंशी महाराजा दिलीप ने एक गौ की रक्षा के लिए सिंह के आगे अपने को डाल दिया, परन्तु हाय! आज एक गौ तो क्या हज़ारों की संख्या में गौ और गोरूप कन्याएं ज़बर्दस्ती की कुठार और वैधव्य की कठोर कृपाण के नीचे अपनी गर्दन को झुकाये मर रही हैं किसी के हृदय में दया तक नहीं आती। और न आशा ही है।

प्यारी बहिनो! पुरुषों की तरफ से अपनी भलाई होने की आशाएं अत्याचार सहते २ थक चुकीं। अब स्वयं कमर कस करके मैदान में आओ और अपने जीवन को सार्थक बनाओ, यदि आप अपने जीवन को सरल और सुखमय बनाना चाहती

हो और कठोर वैधव्य के रौरव नर्क से निकल कर स्वर्गीय शान्तिमय धार्मिक उपभोग करना चाहती हैं तो महर्षियों की बताई हुई धर्मपूर्वक नियोग और पुनर्विवाह की व्यवस्था को काम में लाओ और दुःखदाई वैधव्य नर्क से छुटकारा पाओ। हमारे इस नम्र निवेदन पर विश्वास रखिये कि कोई भी स्त्री पुरुष की गुलाम नहीं है कि वे उसकी अनुचित आज्ञा, इच्छा तथा अत्याचार को चुपचाप सहन करती हुई जन्म व्यतीत करदें। और न कोई धर्मपत्नी, जिसने वेदमन्त्रों की साक्षी से पवित्र विवाह बन्धन जोड़ा है, अपने पति की वेश्या ही है कि वह दिन रात शृङ्गार किये उसके भोग की सामग्री बनी रहे, प्रत्येक स्त्री गृहिणी है, घर की स्वामिनी है जिस पुरुष ने वेद और ईश्वर को साक्षी देकर उसका हाथ पकड़ा है, उसे अर्द्धाङ्गिनी बनाया है, उसके सर्वस्व में बराबर की अधि-कारिणी हैं। वे स्त्रियां अवश्य निन्दा के योग्य हैं जो चुप चाप पति का अत्याचार और तिरस्कार सहती हैं। संसार में क-साइयों का कसूर नहीं है कसूर गायों का है कि उन्होंने अपने सिर पर लम्बे २ सींग रख कर गर्दन छुरी के नीचे झुकादी है कोई ऐसा कसाई नहीं पैदा हुआ जिसने सिंह का शिकार किया हो। क्योंकि वह वीरतापूर्वक गर्दन ऊंची करके युद्ध

के लिये तैयार रहता है। गाय बकरियों ने गर्दन झुका २ कर कसाई पैदा किये हैं। स्त्रियों ने भी पुरुषों के अत्याचार सहना धर्म मान कर अपना सर्वनाश किया है। पुरुषों की क्रूरता पर स्त्रियों ने क्षमा करने में कसर नहीं की, पुरुषों की आज्ञानुसार स्त्रियें घर के एक कोने में अपना मुंह बांध कर बन्द रहती हैं और समझती हैं हमें ऐसा ही रहना चाहिये। पुरुष अनेकों व्याह तो करते ही हैं। साथ ही व्यभिचार भी करते हैं, स्त्रियां कहती हैं ऐसा तो होता ही है पुरुष स्त्रियों को मार पीट सकता है, मनमानी गालियां दे सकता है और क्रोधित होनेपर घर से भी निकाल सकता है। कन्याओं को भेड़ बकरियों की तरह मनमाने मोल पर बूढ़े और हीन पुरुषों के हाथ बेच सकता है। समाज इन निर्दयी पुरुषों का कुछ नहीं कर सकता, परन्तु बालविधवा का विवाह होने पर वे समाज से बहिष्कृत कीजा सकती हैं, इतने अत्याचारों को आंखों से देखती कानों से सुनती व शरीर से भोगती हुई भी भोली भाली स्त्रियां समझती हैं कि– ऐसा तो होता ही है। पुरुष यह सब कर सकता है, विधवा आजन्म ब्रह्मचारिणी और वैरागिनी रहे। और रंडुए तथा बूढ़े सैकड़ों पुनर्विवाह करलें और व्यभिचार करते फिरें

पर स्त्रियें समझती हैं ऐसा होना ही चाहिये। सारांश स्त्रियां पुरुषों के जमाए हुए संस्कारों के कारण अपने ऊपर किये गये अत्याचारों को अनीति न मान कर आत्म विस्मरण किये हुए उल्लवक पशुओं की भांति भयभीत होकर सहती हैं और वह वास्तव में निन्दनीय है और यही कारण है कि पुरुष स्त्रियों पर अत्याचार करने और धाक जमाने का आदी हो गया है। याने "ज्यों ज्यों दवा की मर्ज बढ़ता ही गया," अस्तु।

मेरी प्यारी बहिनो व भाइयो ! यदि आप कायरता की काई से आच्छादित अर्द्धाङ्ग रोग पीड़ित इस वृद्ध हिन्दूसमाज की दीन हीन दशा को सुधारना चाहते हैं तो सब से पहिले इसके आधे अङ्ग की दवा कीजिये और बहुत जल्दी कीजिये और उन वैधव्य के रौरव नर्क में पड़ी हुई और करुणाक्रन्दन करती हुई १२–१५ वर्ष की बालविधवाओं के लिये महर्षियों की बताई हुई समयोचित नियोग और पुनर्विवाह की धार्मिक व्यवस्था को काम में लाकर बेड़ा दुःखसागर से पार लगाइये इसी में समाज की भलाई है। नहीं तो अर्द्धाङ्ग रोग ग्रस्त समाज-संसार में अधिक दिन ठहरने का अधिकारी नहीं हो सकता। अतएव इस " करुणाक्रन्दन पर शीघ्र कान लगाइये और हिन्दू-समाज की इज्ज़त को बचाइये "।

गज़ल ।

हा पती का वियोग मुझ से अब सहा जाता नहीं।
क्या करें जावें किधर हमें काल भी खाता नहीं ॥
सासरे में तो हमें पत्थर की शिल बतलाते सब ।
हाय पीहर में भी बोलें मुंह से पितु माता नहीं ॥
रात दिन शामो सहर दिल पर रहे ग़म का दख़ल ।
ज़िन्दगी किस तौर हो कहीं चैन दरसाता नहीं ॥
रोते रोते लाल रंग आंखों का देखो हो गया ।
पर हमारे हाल पर कोई रहम लाता नहीं ॥
हा हमारा हम-दरद पैदा हुआ था एक यहां ।
खो गया वह भी कहां ढूंढूं नज़र आता नहीं ॥
कर गया उपदेश इनको बरहा समझा गया ।
उस ऋषी का सत्य कहना भी इन्हें भाता नहीं ॥
आह विधवाओं की भारत नाश कर देगी तेरा ।
ले समझ हमको रुलाने में नफ़ा पाता नहीं ॥
'रूप' अब हम ना जियें बस ज़हर के प्याले पियें ।
हाय वेवों को यहां कोई धीर बंधवाता नहीं ॥

सं० रत्न० प्र०

दादरा ।

टेक—कहो तो वहना कैसे धरूं मन धीर ॥

प्राणपती परलोक सिधारे,
होत करेजा चीर ॥ कहो तो० ॥

सासु ससुर मुख सो नहिं बोलें,
हाय विना तकसीर ॥ कहो तो० ॥

पीहर में भी बात न पूछें,
भौजाई अरु बीर ॥ कहो तो० ॥

कित मैं जाऊं करूं अब कैसी,
नैनन बरसे नीर ॥ कहो तो० ॥

ब्याह हमारो करत न दूजो,
मात पिता वे पीर ॥ कहो तो० ॥

'रूप' कहैं जियरा दुख पावै,
मार मरूं शमशीर ॥ कहो तो० ॥

सं० रत्न० प्र०

——:o:——

दादरा ।

टेक विधवा नारी दुखारी हैं भारी ॥

जिस बिन सबर न जैसे तुमको,
तैसे ही पिय बिन ये व्याकुल बिचारी ॥ विध० ॥

अपने व्याह करो तुम छै छै,
इनके गलों पर क्यों रखते कटारी ॥ विध०॥

रात दिवस ये आंसू बहावें,
आंखों से हरदम नहरसी है जारी ॥ विध०॥

नींद न आवे खाना न भावे,
रोती हैं निशि दिन मुसीबत की मारी ॥ विध०॥

'रूप' कहैं हा इनकी आह ने,
कर दीना ये देश भारत भिखारी ॥ विध० ॥

सं० रत्न० प्र०

——:o:——

दादरा ।

टेक—कहो तो बहना कैसे धरूं मन धीर ॥

प्राणपती परलोक सिधारे,
होत करेजा चीर ॥ कहो तो० ॥

सासु ससुर मुख सो नहिं बोलैं,
हाय बिना तकसीर ॥ कहो तो० ॥

पीहर में भी बात न पूछैं,
भौजाई अरु बीर ॥ कहो तो० ॥

कित मैं जाऊं करूं अब कैसी,
नैनन बरसे नीर ॥ कहो तो० ॥

ब्याह हमारो करत न दूजो,
मात पिता बे पीर ॥ कहो तो० ॥

'रूप' कहैं जियरा दुख पावैं,
मार मरूं शमशीर ॥ कहो तो० ॥

मं० रत्न० प्र०

—:o:—

दादरा ।

टेक विधवा नारी दुखारी हैं भारी ॥

त्रिय बिन सबर न जैसे तुमको,
तैसे ही पिय बिन ये व्याकुल बिचारी ॥ विध० ॥

अपने व्याह करो तुम छै छै,
इनके गलों पर क्यों रखते कटारी ॥ विध०॥

रात दिवस ये आंसू बहावें,
आंखों से हरदम नहरसी है जारी ॥ विध०॥

नींद न आवे खाना न भावे,
रोती हैं निशि दिन मुसीबत की मारी ॥ विध०॥

रूप' कहैं हा इनकी आह ने,
कर दीना ये देश भारत भिखारी ॥ विध० ॥

सं० रत्न० प्र०

——:o:——